भारतीय जल-दर्शन

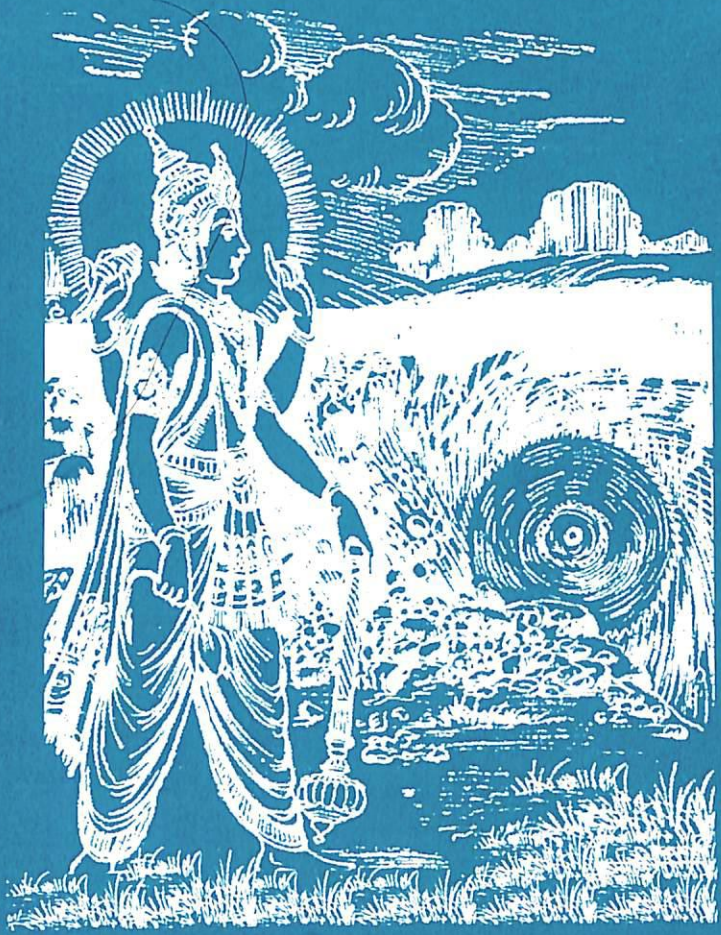

"भारतीय दर्शन में सृष्टि की रचना के लिए भगवान विष्णु चक्र-सुदर्शन से पुष्करिणी (पोखर) खोदकर अपने पसीने से सजल करते हैं और भगवान शिव प्रसन्न होकर उसका नामकरण करते हैं, ऐसा भारत देश धन्य है!

– समाज को समर्पित"

(भारतीय प्रेरणास्रोत ग्रन्थों से 'जल-दर्शन' (जल) संबंधित सामग्री का संकलन)

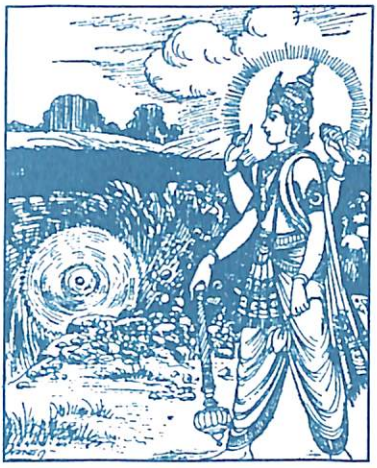

प्रलयकाल में शिव और पार्वती ने काशी क्षेत्र का त्याग नहीं किया इसलिए उसे ''अविमुक्त'' क्षेत्र कहते हैं। जब यह भूमण्डल नहीं रहता और जब जल की सत्ता नहीं रह जाती, उस समय अपने विहार के लिए जगदीश्वर शिव ने इस क्षेत्र का निर्माण किया जिसका नाम आनन्दवन रखा। भगवान शिव ने सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बा के साथ अपने बाएं अंग में अमृत की वर्षा करने वाली दृष्टि डाली। तब उससे एक त्रिभुवन सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ। जो परम शान्त, सत्वगुणों से पूर्ण और समस्त कलाओं की निधि था। वह एक ही सब पुरुषों से उत्तम था, इसलिए ''पुरुषोत्तम कहलाया। उस महान् पुरुष को देखकर महादेव जी ने कहा – 'अच्युत ! तुम महाविष्णु हो, तुम्हारे निःश्वास से वेद प्रकट होंगे और तुम सब कुछ जानोगे।' उनसे ऐसा कह कर भगवान शिव शिवा के साथ पुनः आनन्दकानन में प्रवेश कर गये।

तत्पश्चात् भगवान विष्णु ने क्षणभर ध्यान में तत्पर हो तपस्या में मन लगाया। उन्होंने अपने चक्र से एक सुन्दर पुष्करिणी खोदकर उसे अपने शरीर के पसीने के जल से भर दिया। फिर उसी के किनारे घोर तपस्या की। तब शिवजी पार्वती के साथ वहाँ प्रकट हुए और बोले – 'महाविष्णो ! वर माँगो।'

श्री विष्णु बोले – देवादिदेव महेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मैं सदा भवानी सहित आपका दर्शन करना चाहता हूँ।

भगवान शिव बोले – 'एवमस्तु'। जनार्दन ! इस स्थान पर मेरी मणिजटित कर्णिका गिर पड़ी है, इसलिए इस तीर्थ का नाम मणिकर्णिका हो।

''स्कन्द पुराण''

संकलन

भारतीय प्रेरणास्रोत ग्रंथों से जल-दर्शन (जल) संबंधित सामग्री का संकलन

मूल्य

रुपए 51/- मात्र

प्रथम संस्करण

गुरु पूर्णिमा, 2007

प्रकाशक

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा किशोरी वाया थानागाजी,

जिला : अलवर-301022, राजस्थान

फोन : 01465-225043

ई-मेल watermantbs@yahoo.com

वितरक

जल बिरादरी

34/46, किरण पथ,

मानसरोवर, जयपुर 302020

फोन : 0141-239178

ई-मेल jalbiradari@gmail.com

रूपांकन एवं मुद्रण

कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

भारतीय जल-दर्शन

पूज्य पुराणों के प्रत्येक
अध्याय में जल का जीव-जगत् के लिए
एवं दैनिक जीवन में उपयोग के अतिरिक्त भिन्न–
भिन्न अवसरों पर जल का माहात्म्य है, विभिन्न तीर्थों
में जल की महिमा का वर्णन मिलता है। विशेष पर्वों में
प्रत्येक तीर्थ का अपना स्थान बताया गया है। भारतीय
समाज की परम्पराओं का जीवन शैली में अपना एक महत्व
है। जो समाज के जीवन में रच-बस गई और युगों–युगों
से चली आ रही है। बिना पढ़े, बिना सीखे समाज में
जो जीव कल्याण के लिए स्वयं प्रभावित होती रही
है, वही भारतीय दर्शन है, 'जल-दर्शन'
भारतीय दर्शन का एक प्रधान
अंग है।

विषय सूची

1. पृष्ठभूमि 9
2. सृष्टि स्वरूप 12
   (i) प्रलय काल में जल का वर्णन 14
   (ii) सृष्टि रचना में जल का वर्णन 20
3. जल महत्वता एवं प्रधानता 30
4. जल का साक्षात्कार 34
5. जल और साधना 36
6. अकाल में जल की महत्वता 44
7. पौराणिक जल संरक्षण परम्परा 47
   (i) जलाशय स्तुति 49
   (ii) जलाशय, तड़ाग, बावड़ी, वापी, कुआँ आदि की प्रतिष्ठा की विविध विधि 50
   (iii) जलाशय, तड़ाग, बावड़ी, वापी, कुआँ बनवाने का माहात्म्य एवं विभिन्न विधियाँ 75
8. जलदान का माहात्म्य 91
9. तालाब खुदवाने का पुण्यफल से विशेष परिस्थिति में वंचित होने का कारण 97
   (i) जलाशय जनित विकृतियां 98
10. व्रत–अनुष्ठान में जल का माहात्म्य 99
11. जल और कर्मकाण्ड 109
12. जल के सम्बन्ध में कहानियाँ 137
13. दैनिक जीवन में जल के व्यवहारिक शिष्टाचार एवं उपयोग 154
14. जल से संबंधित सुभाषित मालिका 157
15. जल वंशावली 159
   (i) जल की आधुनिक मान्यताएं एवं जल दृष्टि और दर्शन 160
16. भारतीय जल-दर्शन और न्यायिक व्यवस्था 162

प्राक्कथन

भारतीय जल दर्शन दृष्टि हमारे मुनि व मनीषियों की ज्ञान-पिपासा का एक सुव्यवस्थित ज्ञान सूत्र बिन्दु है। सभी ने सृष्टि रचना की अपने-अपने मतानुसार व्यवस्था दी है। लेकिन जल-दर्शन के विषय में एक मत हैं कि जल ईश्वर की पहली रचना का प्रधान अंग है। बिना जल के सृष्टि का कोई अस्तत्व ही नहीं है। प्रलय ही प्रलय है। प्रलय काल में रसनेन्द्रीय, उसका विषय रस और स्नेह आदि जल के गुण जल में ही लीन हो जाते हैं तो सृष्टि रचना में सम्पूर्ण प्रकृति जलमय सजीव और जीवन्त दिखाई देती है। हमारे पूजनीय वेदों में जल को ईश्वरी तत्व, शक्ति के रूप में स्वीकारा गया है। ईश्वर तत्व के रूप में ही स्तुति की गई है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद और सामवेद में जल की प्रधानता स्पष्ट रूप से लिखित प्रमाण है।

हमारे पुराणों में जल तत्व की उत्पत्ति का जो वृत्तान्त है आज के वैज्ञानिक युग में भले ही नकारा जाता रहा हो, लेकिन सामाजिक जीवन शैली को प्रकृतिमय जीवन जीने की जीवन्त दृष्टि तो इन्हीं में समाहित है। हमारी सामाजिक संरचना के दृष्टांत इन्हीं पुराणों में वर्णित हैं जो ऋषि-मुनियों की वाणी का ज्ञान-प्रसाद स्वरूप है। जिसे भारतीय समाज ने स्वीकार किया और भारतीय जीवनशैली को समृद्ध और पल्लवित किया। आज की आधुनिकता में हमारी जलमयी जीवनशैली के जीवन्त नदियों के किनारे भारतीय समाज का महाकुंभ पर्व जैसे उदाहरण दुनिया को आश्चर्यचकित करते रहे हैं। भारतीय जीवनशैली में ''जल'' जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त का रिश्ता बना हुआ है। युग बदले, सभ्यताएं बदलीं, लेकिन भारतीय जल दर्शन जीवन्त रहा। भारतीय सामाजिक जीवनशैली में जल ईश्वर तुल्य है जिसके नित्य प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। सामाजिक क्रिया-कलापों में जल के सान्निध्य में जीवन्त समाज जल रूप जीता हुआ अपने प्रगति के रास्ते पर अग्रसर रहा।

वर्तमान समय में परिस्थितियां उलट गई दिखाई दे रही हैं। जल बाजार की वस्तु बन कर रह गया है। जबकि भारतीय जीवनशैली में जल का संरक्षण, जल का उपयोग, में कहीं भी बाजार व्यवस्था दिखाई नहीं देती थी। जल मनुष्य जीवन में सबसे अधिक और सबसे पहली मूलभूत आवश्यकता थी परन्तु उसका स्थान बाजार में नहीं भारतीय जीवनशैली में समाहित था। युग और सभ्यताओं के बदलने पर भी समाज में स्व-प्रवाहित रहा है। आज हमारे जल पर दुनिया का बाजार नजर गढ़ाये हुए है बल्कि देश के अधिकांश भाग में जल बाजार के नियंत्रण में जा चुका है। जबकि बिना जल के आमजन जल की बूँद-बूँद के लिए मौहताज है, उसका कण्ठ सूख रहा है, प्राण-पखेरू असमय ही उड़ रहे हैं। हमारा राजतंत्र ''जल जीवन'' को बाजार की वस्तु बनाकर रोजगारोन्मुखी व्यवस्था कायम करने का ढोल दुनिया में पीटता दिखाई दे रहा है। दुनिया के बाजार को भी आमन्त्रित कर उत्साही होता नजर आता है। भला अपने जल रूपी जीवन को बेच कर किसी देश का आमजन या राजतंत्र सुखी रह सकता है, कदापि नहीं। उसे अपनी भूल पर पछताना होगा, अपनी जीवनशैली अपनानी होगी। जलमयी जीवनशैली, प्रकृतिमय जीवनशैली व भारतीय जीवनशैली जिसमें भारतीय जल दर्शन समाहित हो, यही भारत के आमजन के कण्ठ की प्यास बुझाएगा, असमय प्राण-पखेरू को उड़ने से रोकेगा। देश में बढ़ता शहरीकरण एवं उससे प्रदूषित होती नदियों के प्रति समाज एवं सरकार की संवेदनहीनता भविष्य में आपदा का रूप धारण करेगी और हमारी जीवनशैली को प्रभावित करेगी। हमें अभी से सचेत होकर इस ओर ध्यान देना होगा। भारतीय जल दर्शन जीव जगत् का प्राण है। भारतीय जल दर्शन का यह संकलन हमारी सामाजिक जीवनशैली और प्रकृति को जल के सान्निध्य से पल्लवित करता रहेगा।

इसी आशा के साथ।

आपका

राजेन्द्र सिंह

अध्यक्ष जल-बिरादरी

आमुख

पांच महाभूतों में जल सबसे पहले उत्पन्न हुआ बताते हैं और इसी से इस विश्व का निर्माण हुआ। जल – नित्य, सद्सत्स्वरूप तथा कारणभूत अव्यक्त प्रकृति है।

सृष्टि की रचना में जल का बहुत महत्त्व रहा है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से ही सभी प्राणियों की रचना हुई है।

जल जीवित व मृत प्राणियों की आत्माओं को तृप्त करता है।

धर्म-ग्रंथों में जल के बारे में विभिन्न आयामों का विवरण मिलता है – जैसे कि जल की उत्पत्ति व उससे सभी तरह के प्राणियों की रचना। जल का प्राणियों के जीवन में महत्त्व। जल के उपभोग के संयम व नियम। जल का सामाजिक चरित्र। जल संरक्षण की महत्त्वता आदि।

हमारे ऋषि-मुनियों ने समाज को प्रकृति से सतत जोड़ने और कर्त्तव्यपरायण बनने के जल-संरक्षण से अच्छा कोई दूसरा कार्य नहीं बतलाया। जल-संरक्षण कार्य इस भू-लोक में तो साध्य है ही, इसके साथ ही साथ, परलोक में तृप्तिकारक और स्वर्ग में ले जाने का साधन और साध्य दोनों है। स्वयं विष्णु भगवान ने अपने चक्र-सुदर्शन से चक्र-सरोवर का निर्माण कर समाज में जल-संरक्षण का संदेश प्रवाहित किया। ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित **''पुष्कर''** पुष्कर-तीर्थ बन गया है। हमारे पुराणों में जल-संरक्षण से संबंधित अनेक प्रकार की

संरचनाओं की प्रतिष्ठित विधियाँ एवं इनका जीव-जगत् के कल्याण के लिये माहात्म्य बतलाया है। भीष्म पितामह ने तो यहां तक कहा है कि पानी दुर्लभ पदार्थ है। परलोक में उसका मिलना और भी कठिन है, जो जल का दान करते हैं वे ही वहां सदा तृप्त रहते हैं। पानी का दान सब दानों में भारी व सबसे श्रेष्ठ है।

हमारे सामाजिक जीवन में कर्मकाण्ड का अपना महत्त्व है। यह हमारी जीवनशैली का एक अंग है व इसमें जल का विशेष महत्त्व है। फिर भी मनुष्य जल के उपयोग में संवेदनहीन है व इसका सद्उपयोग नहीं करते। पानी को आज भोग की वस्तु मानकर बाजारीकरण कर रहे हैं, अनुचित उपयोग कर प्रदूषित कर रहे हैं, स्वार्थी बन कर जल का दोहन कर रहे हैं। जल के सद्उपयोग का ज्ञान जो हमें ईशोपनिषद के इस नीचे लिखे श्लोक से मिला, उसे भुला रहे हैं –

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

इस श्लोक का सही अर्थ समझना व उसे जीवन में उतार कर पंचमहाभूतों का सेवन करना, खासतौर से जल का, ही हमारे आज व आने वाले जल-संकट का समाधान है। प्रकृति का हमारे ऊपर जो ऋण है, उसे उतारने का सबसे बढ़िया तरीका है कि जितना प्रकृति से लेते हैं, अगर ज्यादा नहीं तो कम से कम उतना तो प्रकृति को वापिस दें। जल के क्षेत्र में वर्षा-जल को भूमि में डालना व जल का सोच-समझकर उपयोग करना हमारा पहला कदम है। पाठक इस पुस्तक से प्रेरणा पाकर जल के प्रति संवेदनशील होकर सुमार्ग पर चलेंगे, ऐसी मेरी कामना है। लेखक ने यह संकलन कर समाज के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, इसके लिये वे बधाई के पात्र हैं।

प्रो. मनोहर सिंह राठौड़
विकास अध्ययन संस्थान, जयपुर

पृष्ठभूमि

पौराणिक इतिहास में अपनी सभ्यता-समृद्धि देखने का प्रचलन नहीं है। नया भी समय के साथ-साथ पुराना हो जाता है। हमेशा इतिहास से सबक लेने के उदाहरणों की बातें की जाती रही हैं। विकास की दौड़ में समय निकल जाता है। आधुनिकता की ओर चलने के कारण पीछे देखना अच्छा भी नहीं लगता।

विश्व स्तर पर आधुनिक विकास सभ्यता या प्राकृतिक संसाधनों का अति उपभोग की सभ्यता के अन्तर्गत मनुष्य अपना जीवन जीने की लालसा रख जीवन जीता हो, तो उसकी मूल आवश्यक वस्तुओं का भी दोहन अत्यधिक बढ़ता जाता है। इससे समस्या बढ़ती जाती है। मनुष्य इसका अनुभव करता है, समझता है, समस्या का मूल कारण स्वयं वही है। फिर भी बढ़ती समस्याओं का दोषारोपण दूसरों पर डालता है।

आज विकास की दुनिया में पानी की समस्या बढ़ती जा रही है। एक तरफ जीवन के लिए पानी चाहिए तो दूसरी तरफ पानी का बढ़ता बाजार है। जीव-जगत् जीवन के लिए पानी जरूरी है तो पानी दुनिया की सबसे पहली आवश्यकता है। बाजार के लिए पैसा और रोजगार जरूरी है। आज इससे अच्छा लाभ देने वाली दुनिया की कोई अन्य वस्तु नहीं है। **बाजार की निगाह धरती के पानी पर है, तो गरीब की निगाह आसमान में।** दुनिया का राजतन्त्र पानी की तलाश में देश-परदेश में पानी के लिए मन्त्रणा कर रहा है। उसके चारों तरफ बाजार घूम रहा है। बाजार की चकाचौंध में राजतन्त्र अंधा हो गया है और बहरा भी। राजतन्त्र के अंधा-बहरा होने पर सर्वनाश निश्चित है।

राजतन्त्र को गरीब दिखाई नहीं देता, न ही उसकी आवाज सुनाई देती है। ऐसी स्थिति में पानी की लूट बढ़ती जा रही है। धृतराष्ट्र बढ़ रहे हैं, विदुर का ज्ञान-विज्ञान बेकार जा रहा है। ऐसी सामाजिक जीवन शैली में बहुत से कृष्ण भगवानों की जरूरत होगी जो अपनी प्रकृति को बचा सकें।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

तासू शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥

जल नर से प्रकट हुआ है, इसलिए वह नार कहलाता है। भगवान् उसमें सोते हैं– भगवान का वह अयन है, इसलिए वे नारायण कहे गये हैं। इस दृष्टि से–

जल सृष्टि की सबसे पहली अमानत है। आज जो कुछ भी है, वह सब जल की उपलब्धता से है। वरना जल की कमी से रेगिस्तान के धोरे दिखलाई देते हैं। इसके लिए हमें कहीं नहीं जाना है। अपने देश में इससे अच्छा उदाहरण विश्व में दूसरा नहीं है। पानी का किसी उद्योग में उत्पादन नहीं किया जा सकता है। उद्योग केवल भूमि के पानी का उपयोग-दुरुपयोग करते हैं। नई-नई तकनीक से भू-जल का दोहन बढ़ रहा है। बिना पानी के भूमि में बांझपन बढ़ता जा रहा है। इलाज अमेरिका में हो रहा है। जहां दुनिया के पानी की गुणवत्ता को देखकर बहुराष्ट्रीय कम्पनी महौषधि से पानी के उपचार की बड़ी-बड़ी योजनाएं बनायी जा रही हैं। जल की समस्या बढ़ती जा रही है।

प्रकृति की रक्षा के लिए, जल समस्या के हल के लिए, जीव-जगत् की तृप्ति के लिए, गरीब की झोपड़ी के लिए, प्याऊ के लिए, गांव की खेती के लिए, वनस्पति की हरियाली के लिए, दैनिक जीवन के लिए, श्राद्ध और पितरों के तर्पण के लिए, उद्योग के लिए **जल** चाहिए। मनुष्य प्रकृति के साथ जैसा व्यवहार करेगा, वैसा ही फल प्राप्त करेगा। प्रकृति मनुष्य के कर्म का प्रतिफल उसकी जीवन-शैली के आधार पर देती है।

जल बाजार के लिए नहीं है, भारतीय सभ्यता और जीवनशैली में पानी का व्यापार निषेध रहा है। पानी का व्यापार करने वाला हमेशा पापी कहलाता है, लेकिन आज भारतीय समाज जल के व्यापार में बढ़ता जा रहा है। पानी की समस्या पीछे-पीछे है। इस स्थिति में जल संकट बढ़ेगा ही।

एक बार फिर सदियों पुरानी भारतीय प्राचीन ''पौराणिक जल-संरक्षण परम्परा और जीवन शैली'' सभ्यता के ग्रंथों की धूल-मिट्टी को झाड़े, साफ करे और देखे कहीं कोई रास्ता दिखाई दे। इस छोटी सी पुस्तक में भारतीय समाज के पूज्यनीय अट्ठारह पुराणों से संकलित जल-संरक्षण एवं जल दर्शन और जल की महत्वता को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है जिससे समाज का हर व्यक्ति बढ़ती जल समस्या के समाधान में अपना यथाशक्ति स्थान, गांव, कस्बा, शहर, प्रदेश और देश में जल संरक्षण का कार्य करे, ऐसी आशा है।

भारतीय जल-दर्शन के संकलन की प्रेरणा अरुण तिवाड़ी जी ने दी और उत्साहित एवं मार्ग-दर्शन श्री मनोहर सिंह राठौड़ साहब ने किया। मैं दोनों का सहृदय से आभारी हूँ।

– सत्येन्द्र सिंह

तरुण भारत संघ

प्रेरणा-स्रोत

पौराणिक जल संरक्षण के साधन की प्रतिष्ठा, मुहूर्त एवं जल दान का माहात्म्य निम्न पुराणों से संकलित किया है :

1. पद्म पुराण, 2. नारद पुराण, 3. अग्नि पुराण, 4. भविष्य-पुराण, 5. ब्रह्मपुराण, 6. स्कन्द पुराण, 7. विष्णु पुराण, 8. शिव पुराण, 9. ब्रह्मवैवर्तपुराण, 10. गरुड पुराण, 11. श्री हरिवंश पुराण, 12. मार्कण्डेय पुराण, 13. मत्स्य पुराण, 14. श्रीमद्भागवत – महापुराण, 15. श्रीनरसिंह पुराण, 16. श्री वामन-पुराण, 17. श्रीवराह पुराण, 18. महाभारत, 19. श्री हरिःकल्याण, 20. सत्यार्थ प्रकाश, 21. सुभाषित।

सृष्टि स्वरूप

सृष्टि स्वरूप विषय में हमारे ऋषि-मुनियों ने युगों-युगों पूर्व सतत वैचारिक मंथन कर अपने विचारों को विभिन्न पुराणों के रूप में समाज को समर्पित किया। यही पुराण भारतीय आस्था के पूज्यनीय धर्मग्रंथ कहलाये गये हैं। इन्हीं धर्मग्रन्थों से सृष्टि के विषय में जानकारी संकलित करने का प्रयास किया है।

सृष्टि के दो रूप हैं :

1. प्रलय काल
2. सृष्टि रचना काल

1. प्रलय काल में रसनेन्द्रिय, उसका विषय रस और स्नेह आदि जल के गुण जल में ही लीन हो जाते हैं।
2. सृष्टि रचना काल-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं ततो नारायण स्मृतः॥

पुरुषोत्तम नर से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहा जाता है, क्योंकि जल भी नार अर्थात् पुरुषोत्तम परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। सृष्टि के पूर्व वह नार ही भगवान् हरिका अयन- निवास रहा, अतएव उनकी नारायण संज्ञा हो गयी। फिर पूर्वकल्पों की भांति उन हरि के मन में सृष्टि रचना का संकल्प

उदित हुआ। तब उनसे बुद्धिशून्य तमोमयी सृष्टि उत्पन्न हुई। इस प्रकार सृष्टि रचना का क्रम बढ़ता गया।

महाभारत - शान्ति पर्व

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता उपदेश के समय अपने नामों की व्याख्या में बताया कि नर पुरुष से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहते हैं, वह नार 'जल' पहले मेरा अयन 'निवास स्थान' था, इसलिए मैं 'नारायण' कहलाता हूँ।

प्रलय काल में जल का वर्णन

प्रलय काल में जल का वर्णन-
श्रीमद्भागवत् महापुराण से संकलित

द्वादशस्कन्ध-अथचतुर्थोध्याय:-प्रलयकालकावर्णन-श्रीशुकदेवजी औरपरीक्षितसंवाद/श्रीशुकदेवजीकहतेहैं:-परीक्षित ! तीसरे स्कन्ध में परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त काल का स्वरूप और एक-एक युग कितने वर्षों का होता है, यह मैं तुम्हें बतला चुका हूँ। अब तुम कल्प की स्थिति और उसके प्रलय का वर्णन सुनो। राजन् ! एक हजार चतुर्युगी का ब्रह्मा का एक दिन होता है। ब्रह्मा के इस दिन को कल्प भी कहते हैं। एक कल्प में चौदह मनु होते हैं। कल्प के अन्त में उतने ही समय तक प्रलय भी रहता है। प्रलय को ही ब्रह्मरात्रि भी कहते हैं। उस समय ये तीनों लोक लीन हो जाते हैं, उनका प्रलय हो जाता है। इसका नाम नैमित्तिक प्रलय है। इस प्रलयकेअवसरपरसारेविश्वकोअपनेअन्दरसमेटकर-लीनकरब्रह्माऔरतत्पश्चात् शेषशयी भगवान् नारायण भी शयन कर जाते हैं। इस प्रकार रात के बाद दिन और दिन के बाद रात होते -होते जब ब्रह्मा जी की अपने मान से सौ वर्ष की और मनुष्यों कीदृष्टिमेंदोपरार्द्धकीआयुसमाप्तहोजातीहै,तबमहतत्व,अहंकारऔरपंचतन्मात्रा- ये सातों प्रकृतियां अपने कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाती हैं।

राजन् ! इसका नाम प्राकृतिक प्रलय है। प्रलय में प्रलय का कारण उपस्थित होने पर पंचभूतों के मिश्रण से बना हुआ ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़ कर कारण रूप में स्थित हो जाता है, घुल-मिल जाता है।

परीक्षित ! प्रलय का समय आने पर सौ वर्ष तक मेघ पृथ्वी पर वर्षा नहीं करते। किसी को अन्न नहीं मिलता। उस समय प्रजा भूख-प्यास से व्याकुल होकर एक-दूसरे को खाने लगती है। इस प्रकार काल के उपद्रव से पीड़ित होकर धीरे-धीरे सारी प्रजा क्षीण हो जाती है। प्रलयकालीन सांवर्तक सूर्य अपनी प्रचंड किरणों से समुद्र, प्राणियों के शरीर और पृथ्वी का सारा रस खींच-खींच कर सोख जाते हैं और उन्हें सदा की भांति पृथ्वी पर बरसाते नहीं। उस समय सांवर्पण भगवान् के मुख से प्रलयकालीन संवर्तक अग्नि प्रकट होती है। वायु के वेग से यह और भी बढ़ जाती है और तल-अतल आदि सातों नीचे के लोकों को भस्म कर देती है। वहां के प्राणी तो पहले ही मर चुके होते हैं। नीचे से आग की करारी लपटें और ऊपर से सूर्य की प्रचण्ड गर्मी ! उस समय यह बाह्माण्ड जलने लगता है। और ऐसा जान पड़ता है, मानो गोबर का उपला जलकर अंगारे के रूप में दहक रहा हो। इसके बाद प्रलयकालीन अत्यन्त-प्रचण्ड सांवर्तक वायु सैकड़ों वर्षों तक चलती रहती है। उस समय का आकाश धुएँ और धूल से तो भरा ही रहता है, उसके बाद असंख्य रंग-बिरंगे बादल आकाश में मंडराने लगते हैं और बड़ी भयंकरता के साथ गरज-गरज कर सैकड़ों वर्षों तक वर्षा करते रहते हैं। उस समय ब्रह्माण्ड के भीतर का सारा समुद्र एक हो जाता है, सब कुछ जलमग्न हो जाता है।

इस प्रकार जब जल-प्रलय हो जाता है, तब जल पृथ्वी के विशेष गुण-गन्ध को ग्रस लेता है- गन्ध गुण में लीन हो जाने पर पृथ्वी का प्रलय हो जाता है, वह जल में घुल-मिलकर जलरूप बन जाती है। राजन् ! इसके बाद जल के गुण रस को तेजत्व ग्रस लेता है और जल नीरस होकर तेज में समा जाता है। तदन्तर वायु तेज के गुण को ग्रस लेता है और तेज रूप रहित होकर वायु में लीन हो जाता है। अब आकाश वायु के गुण स्पर्श को अपने में मिला लेता है और वायु स्पर्शहीन होकर आकाश में शान्त हो जाता है। इसके बाद तामस

अहंकार आकाश के गुण शब्द को ग्रस लेता है और आकाश शब्दहीन होकर तामस अहंकार में लीन हो जाता है। इस प्रकार तेजस अहंकार इन्द्रियों को और वैकारिक 'सात्विक' अहंकार इन्द्रियाधिष्ठात्- देवता और इन्द्रियवृत्तियों को अपने में लीन कर लेता है। तत्पश्चात् महतत्व अहंकार को और सत्व आदि गुण महत्व को ग्रस लेते हैं। परीक्षित! यह सब काल की महिमा है। उसकी प्रेरणा से अव्यक्त प्रकृति गुणों को ग्रस लेती है और तब केवल प्रकृति ही प्रकृति शेष रह जाती है। वही चराचर जगत् का मूल कारण है। वह अव्यक्त, अनादि, अनन्त, नित्य और अविनाशी है। जब वह अपने कार्यों को लीन करके प्रलय के समय साम्यावस्था को प्राप्त हो जाती है, तब काल के अवयव वर्ष, मास, दिन-रात, क्षण आदि के कारण उसमें परिणाम, क्षय वृद्धि आदि किसी प्रकार के विकार नहीं होते। उस समय प्रकृति में स्थूल अथवा सूक्ष्मरूप से वाणी, मन सत्वगुण, रजोगुण, तमोगण, महतत्व आदि विकार, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और उसके देवता आदि कुछ नहीं रहते। सृष्टि के समय रहने वाले लोकों की कल्पना और उनकी स्थिति भी नहीं रहती। उस समय स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति- ये तीन अवस्थाएँ नहीं रहतीं। आकाश, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और सूर्य भी नहीं रहते। सब कुछ सोये हुए के समान शून्य-सा रहता है। उस अवस्था का तर्क के द्वारा अनुमान करना भी असम्भव है। उस अव्यक्त को ही जगत् का मूलभूत तत्व कहते हैं। इसी अवस्था का नाम 'प्राकृत प्रलय' है। उस समय पुरुष और प्रकृति दोनों की शक्तियाँ काल के प्रभाव से क्षीण हो जाती हैं और विवश होकर अपने मूल-स्वरूप में लीन हो जाती हैं।

आत्यन्तिक प्रलय या मोक्ष स्वरूप

परीक्षित ! अब आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष का स्वरूप बतलाया जाता है। बुद्धि, इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में उनका अधिष्ठान, ज्ञानस्वरूप वस्तु ही भासित हो रही है। उन सबका तो आदि भी है और अन्त

भी। इसलिए वे सब सत्य नहीं हैं। वे दृष्य हैं और अपने अधिष्ठान से भिन्न उनकी सत्ता भी नहीं है। इसलिए वे सर्वथा मिथ्या-मायामात्र हैं। जैसे दीपक, नेत्र और रूप ये तीनों तेज से भिन्न नहीं हैं, वैसे ही बुद्धि, इन्द्रिय और उनके विषय तन्मात्राएं भी अपने अधिष्ठान स्वरूप ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं यद्यपि वह इनसे सर्वथा भिन्न है, जैसे रज्जुरूप अधिष्ठान में अध्यस्त सर्प अपने बधिष्ठान से पृथक् नहीं है, परन्तु अध्यस्त सर्प से अधिष्ठान का कोई संबंध नहीं है। परीक्षित ! जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति- ये तीनों अवस्थाएं बुद्धि की ही हैं। अतः इनके कारण अन्तरात्मा में जो विश्व, तेजस और प्राज्ञ रूप नानात्व की प्रतीति होती है, वह केवल मायामात्र है। बुद्धिगत नानात्व का एकमात्र सत्य आत्मा से कोई संबंध नहीं है। विश्व उत्पत्ति और प्रलय से ग्रस्त है, अनेक अवयवों का समूह अवयवी है। अतः यह कि ब्रह्म में होता है और कभी नहीं होता, ठीक वैसे ही जैसे आकाश में मेघ माला कभी होती है कभी नहीं होती। परीक्षित ! जगत् के व्यवहार में जितने भी अवयवी पदार्थ हैं, उनके न होने पर भी उनके भिन्न-भिन्न अवयव सत्य माने जाते हैं। क्योंकि वे इनके कारण हैं। जैसे वस्त्र रूप अवयवी के न होने पर भी उसके कारण रूप सूत का अस्तित्व माना ही जाता है, उसी प्रकार कार्यरूप जगत् के अभाव में भी इस जगत् के कारण रूप अवयव की स्थिति हो सकती है। परन्तु ब्रह्म में यह कार्य-कारण भाव भी वास्तविक नहीं है। क्योंकि देखो कारण तो सामान्य वस्तु है और कार्य विशेष वस्तु। इस प्रकार का जो भेद दिखाई देता है, वह केवल भ्रम ही है। इसका हेतु यह है कि सामान्य और विशेष भाव आपेक्षिक हैं, अन्योन्याश्रित हैं, विशेष के बिना सामान्य और सामान्य के बिना विशेष की स्थिति नहीं हो सकती। कार्य और कारण अभाव का आदि और अन्त दोनों ही मिलते हैं, इसलिए भी वह स्वाप्निक विकार के समान ही प्रतीत हो रहा है, तो भी अपने अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूप आत्मा से भिन्न नहीं है। कोई चाहे तो भी यह अपने आत्मा से भिन्न रूप में अणुमात्र भी इसका निरूपण नहीं कर सकता। यदि आत्मा से पृथक् इसकी सत्ता मानी भी जाये तो

यह भी चिद्रूप आत्मा के समान स्वयं प्रकाश होगा, और ऐसी स्थिति में वह आत्मा की भांति ही एकरूप सिद्ध होगा। परन्तु इतना तो सर्वथा निश्चित है कि परमार्थ सत्य वस्तु में नानात्व नहीं है। यदि कोई अज्ञानी परमार्थ-सत्य वस्तु में नानात्व स्वीकार करता है तो उसका मानना वैसा ही है, जैसा महा काश और घटाकाश का, आकाश स्थित सूर्य और जल प्रतिबिम्बित सूर्य का तथा बाह्य वायु और आन्तर वायु का भेद मानना।

जैसे व्यवहार में मनुष्य एक ही सोने को अनेकों रूपों में गढ़-गलाकर तैयार कर लेते हैं और वह कंगन, कुण्डल, कड़ा आदि अनेकों रूपों में मिलता है, इसी प्रकार व्यवहार में निपुण विद्वान लौकिक और वैदिक वाणी के द्वारा इन्द्रियातीत आत्मास्वरूप भगवान का भी अनेकों रूपों में वर्णन करते हैं। देखो, न बादल सूर्य से उत्पन्न होता है और न सूर्य से ही प्रकाशित। फिर भी वह सूर्य के ही अंश नेत्रों के लिए सूर्य का दर्शन होने में बाधक बन बैठता है। इसी प्रकार अहंकार भी ब्रह्म से ही उत्पन्न होता, ब्रह्म से ही प्रकाशित होता है और ब्रह्म के अंश जीव के लिए ब्रह्मस्वरूप के साक्षात्कार में बाधक बन बैठता है। जब सूर्य से प्रकट होने वाला बादल तितर-बितर हो जाता है, तब नेत्र अपने स्वरूप सूर्य का दर्शन करने में समर्थ होते हैं। ठीक वैसे ही, जब जीव के हृदय में जिज्ञासा जगती है, तब आत्मा की उपाधि अहंकार नष्ट हो जाता है और उसे अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। प्रिय परीक्षित ! जब जीव विवेक के खड्ग से मायामय अहंकार का बंधन काट देता है, तब यह अपने एक रस आत्मा स्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है। आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय कही जाती है। हे शत्रुदमन ! तत्वदर्शी लोग कहते हैं कि ब्रह्मा से लेकर तिनके तक जितने प्राणी या पदार्थ हैं, सभी हर समय पैदा होते हैं और मरते रहते हैं। अर्थात् नित्य रूप से उत्पत्ति और प्रलय होता ही रहता है। संसार के परिणामी पदार्थ नदी-प्रवाह और दीप-शिखा आदि क्षण-क्षण बदलते रहते हैं, उनकी बदली हुई अवस्थाओं को देखकर यह निश्चय होता है

कि देह आदि भी कालरूप सोते के वेग में बहते-बदलते जा रहे हैं। इसलिए क्षण-क्षण में उनकी उत्पत्ति और प्रलय हो रहा है जैसे आकाश में तारे हर समय चलते ही रहते हैं, परन्तु उनकी गति स्पष्ट रूप से नहीं दिखायी पड़ती, वैसे ही भगवान के स्वरूपभूत अनादि-अनन्तकाल के कारण प्राणियों की प्रतिक्षण होने वाली उत्पत्ति और प्रलय का भी पता नहीं चलता। परीक्षित ! मैंने तुमसे चार प्रकार के प्रलय का वर्णन किया; उनके नाम हैं : नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्रकृतिक प्रलय और आत्यन्तिक प्रलय। वास्तव में काल की सूक्ष्म गति ऐसी ही है।

सृष्टि रचना में जल का वर्णन

सृष्टि रचना में जल का वर्णन-श्रीहरिवंश पुराण से संकलित

भविष्य पर्व-एकादशोध्यायः परमात्मा द्वारा भूतों की सृष्टि एवं ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव, वैशम्पायन जी और जनमेजय संवाद।

वैशम्पायनजी कहते हैं- जनमेजय ! वे हंससंज्ञक परमात्मा कुम्भयोनि ब्रह्मर्षि वशिष्ठ होकर अपनी कुम्भजनित देह को आत्मा समष्टि के अभिमानी चेतन से आच्छादित करके तपस्या करने लगे। उस समय उन अत्यन्त शक्तिशाली विश्वरूप महात्मा ने भौतिक जगत तथा उसके उत्पादकभूत पंचमहाभूतों की सृष्टि का विचार किया। आकाश रहित जलस्वरूप सूक्ष्म गुफा में जगत् के लीन हो जाने पर वहां उस समय तपस्या से भावित अन्तःकरण वाले वे परमेश्वर जब इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे, तब सलिल राशि में स्थित हुए उन्होंने उस एकाणर्व में कुछ क्षोभ हलचल उत्पन्न कर दिया। तदन्तर उनके मन में जो सृष्टिविषयक संकल्पक की दूसरी तरंग उठी, उससे उस जल में सूक्ष्म छिद्र आकाश या अवकाश प्रकट हो गया। तदन्तर संकल्प की पुनः तीसरी तरंग उठी, उससे उस आकाश में शब्द की गति हुई अर्थात् वे ईश्वर ही वहां शब्द रूप से गतिशील हुए। उनके इस प्रकार गतिशील होने में वायु का वेग ही कारण था। यदि कहें उस समय वहां वायु ही कहां थी तो इसका उत्तर सुनो- वे ईश्वर छिद्र या अवकाश पाते ही अक्षोभ्य होकर भी स्वयं वायु रूप में प्रकट हो वहां बढ़ने लगे, तात्पर्य यह है कि आकाश के अनन्तर उत्पन्न हुई वायु शब्द और गति की

अभिव्यक्ति के कारण हुई। उस बढ़ती प्रबल वायु से वह एकार्णव का जल सब ओर से क्षुब्ध हो उठा। उसमें बहुत सी तरंगें उठकर परस्पर वेग से टकराती हुई उस महासागर को मथने लगीं। उस क्षुब्ध महासागर का जल जब इस प्रकार मथा जाने लगा, तब उससे ज्वालामालाओं से युक्त शक्तिशाली कृष्णवर्त्मा अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ। उस अग्नि ने वहां फैली हुई अगाध जलराशि को सोख लिया। उस जल राशि के क्षीण हो जाने से वहां का स्थान खाली हो गया और आकाश निकल आया। अमृत रस के समान मधुर एवं पवित्र जल परमात्मा के तेज से प्रकट हुआ है। उस जल में जो छिद्र प्रकट हुआ, उससे आकाश का आविर्भाव हुआ और आकाश से वायु की उत्पत्ति हुई। घी के समान द्रव्यस्वरूप जो जल है, उसके पारस्परिक संघर्ष से पृथ्वी का प्रादुर्भाव हुआ। उस पृथ्वी और पार्थिव शरीर में जठरानल का प्राकट्य हुआ, जो परम्परा जल से ही उत्पन्न है। उसे देख कर महाभूतों के आदिस्रष्टा परमात्मादेव बहुत प्रसन्न हुए। लोकसृष्टि के प्रयोजन और तत्व को जानने वाले अनेक रूपधारी वे भगवान् प्रत्येक कल्प में इस प्रकार भूतों का प्राकट्य देखकर सृष्टि-विस्तार के लिए हितकर ब्रह्माजी को उत्पन्न करते हैं।

एक सहस्रंचतर्युग बीतने पर ब्रह्माजी का एक दिन होता है, 'और इसी दिन से वे सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं। वे ब्रह्मा पर्वकल्प में इस पृथ्वी पर तपस्या से शुद्ध अन्तःकरण वाले द्विजराजों में श्रेष्ठ, ब्रह्म के उपासक, यत्नशील, अनेक जन्मों तक चित्वृत्तियों का विरोध करने वाले, ज्ञानवान, विश्वात्मा का साक्षात्कार करने वाले और योगियों में सर्वश्रेष्ठ योगवेत्ता रहे होते हैं। योगवेत्ता विश्वेश्वर उन योगवान सबके लिये उपसाय तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य और विक्रम से सम्पन्न ब्रह्मा जी को वेद और जगत् की परम्परा बनाये रखने के कार्य में नियुक्त करते हैं। ब्रह्माजी को नियुक्त करने के अनन्तर भगवान श्री हरि अपने स्वरूपभूत उस महान् जल में अच्युक्तरूप से स्थित होते हैं और ये नियुक्त हुए तेजस ब्रह्मा प्राणियों के कर्मवश उनके कर्मों से उपरत होने पर सोते तथा सबके कर्मों के

उद्भव होने पर नाना प्रकार से क्रीड़ाएं करते हुए आनन्द मग्न होते हैं। उस समय जब कि ब्रह्मा के जन्म का समय उपस्थित हुआ था, भगवान श्री हरि ने अपनी नाभि से एक सहस्रदल कमल प्रकट किया, जो रजोगुण या रज से रहित सूर्य के समान तेजस्वी तथा सुवर्णमय था। महात्मा श्री हरिक शरीर से प्रकट हो अत्यन्त मनोहर दिखायी देने वाला वह अतिशय कान्तिमान् सुगन्धित कमल बड़ी शोभा पा रहा था। वह आग की प्रज्ज्वलित शिखा के समान अपनी उज्ज्वल प्रभा से प्रकाशित हो रहा था।

सृष्टि रचना- श्री वराहपुराण से संकलित

अध्याय दो में विभिन्न सर्गों में पृथ्वी एवं वराह भगवान के संवाद

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्व ततो नारायणः स्मृतः॥

पुरुषोतम नर से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहा जाता है, क्योंकि जल भी नार अर्थात् पुरुषोतम परमात्मा से उत्पन्न हुआ है। सृष्टि के पूर्व वह नार ही भगवान् हरिका अयन-निवास रहा, अतएव उनकी नारायण संज्ञा हो गयी। फिर पूर्वकल्पों की भांति उन हरि के मन में सृष्टि रचना का संकल्प उदित हुआ। तब उनसे बुद्धिशून्य तमोमयी सृष्टि उत्पन्न हुई। इस प्रकार सृष्टि रचना का क्रम बढ़ता गया। पूर्व काल में जब सर्वव्यापी भगवान् नारायण ने वराह रूप धारण करके अपनी शक्ति द्वारा एकार्णव की अनन्त जल राशि में निमग्न पृथ्वी का उद्धार किया।

अध्याय 43 में सांनिहत्य सरोवर के संबंध में - श्री वामन पुराण से संकलित

लोमहर्षण एवं सनत्कुमार जी के संवाद

सनत्कुमार ने लोमहर्षण को सृष्टि रचना के विषय में कहा कि अब तुम परमात्मा ब्रह्म की उत्पत्ति के विषय में सुनो।

आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुश्रुमः।
तासू शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ।।

'आपः' जल ही को 'नार' एवं परमात्मा को 'तनु' - ऐसा हमने सुन रखा है। वे 'परमात्मा' उसमें शयन करते हैं, जिसे वे 'शब्दव्युत्पतिसे' 'नारायण' शब्द से स्मरण किये गये हैं। जल में सोने के बाद जाग जाने पर उन्होंने जगत् को अपने में प्रविष्ट जानकर अण्ड को तोड़ दिया, उससे 'ओम' शब्द की उत्पत्ति हुई। इसके बाद पहली बार भूः, दूसरी बार भुवः एवं तीसरी बार स्वः की उत्पत्ति 'ध्वनि' हुई। इन तीनों का नाम क्रमशः मिलकर 'भू भूर्वः स्वः' हुआ। उस सविता देवता का तेज परेण्य तेज है, वह उसी से उत्पन्न हुआ। अण्ड से जो तेज निकला, उसने जल को सुखा दिया। तेज से जल को सोखे जाने पर शेष जल कलल की आकृति में बदल गया। कलल से बुदबुद हुआ और उसके बाद वह कठोर हो गया। कठोर हो जाने के कारण वह बुदबुद भूतों को धारण करने वाली धरणी बन गया। जिस स्थान पर अण्ड स्थित था, वहीं संनिहित नाम का सरोवर है। तेज के आदि में उत्पन्न होने के कारण उसे 'आदित्य' नाम से कहा जाता है। फिर सारे संसार के पितामह ब्रह्मा अण्ड के मध्य में उत्पन्न हुए। उस अण्ड का उल्ब 'गर्भ का आवरण' मेरू पर्वत है एवं अन्य पर्वत उसके जरायु 'झिल्ली' माने जाते हैं। समुद्र एवं सहस्त्रों नदियां गर्भ के जल हैं। ब्रह्मा के नाभि-स्थान में जो विशाल निर्मल जल राशि है, उस स्वच्छ श्रेष्ठ जल से महान् सरोवर भरा-पूरा है। इसके बाद ब्रह्मा जी ने सृष्टि में प्रकृति रचना को साकार रूप दिया

भगवान विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा होकर संसार की सृष्टि– पद्म पुराण से संकलित।

भीष्म जी और पुलस्त्य जी संवाद।

भीष्म जी ने पुलस्त्य जी से भगवान द्वारा रचित सृष्टि के विषय में पूछा। पुलस्त्य जी ने कहा -

सृष्टिस्त्यिन्तकीणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः।

भगवान विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा होकर संसार की सृष्टि में प्रवृत होते हैं तथा जब तक कल्प की स्थिति बनी रहती है तब तक वे ही युग-युग में अवतार धारण करके समूची सृष्टि की रक्षा करते हैं। वे विष्णु सत्वगुण धारण किये रहते हैं, उनके पराक्रम की कोई सीमा नहीं है। राजेन्द्र ! जब कल्प का अन्त होता है, तब वे अपना तम प्रधान रौद्र रूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियों का संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतों का नाश करके संसार को एकार्णव के जल में निमग्न कर वे सर्वरूप धारी भगवान् स्वयं शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं। फिर जगने पर ब्रह्मा का रूप धारण करके वे नये सिरे से संसार की सृष्टि करने लगते हैं, इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन और संहार करने के कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं। वे प्रभु स्रष्टा होकर स्वयं अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक होकर पालनीय रूप से अपना ही पालन करते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश- सब वे ही हैं, क्योंकि अविनाशी विष्णु ही सब भूतों के ईश्वर और विश्वरूप हैं। इसलिए प्राणियों में स्थित सर्ग आदि भी उन्हीं के सहायक हैं। वीर ! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी - ये क्रमशः शब्दादि उत्तोतर गुणों से गुण शब्द और स्पर्श, तेज के गुण शब्द, स्पर्श और रूप जल के शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वी के शब्द, स्पर्श रूप, रस एवं गन्ध ये सभी गुण हैं। एक-दूसरे से मिलने पर सभी भूत शान्त घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं। पृथक्-पृथक् देखने पर तो पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है।

पुलस्त्य जी ने भीष्म जी को, वरुण को जल का स्वामी बताया है। पितरों के श्राद्ध में कहा है कि किसी ऐसे स्थान को जो दक्षिण दिशा की ओर नीचा हो, गोबर से लीप कर वहां श्राद्ध आरम्भ करें अथवा गोशाला में या जल के समीप श्राद्ध करें। पुलस्त्य जी ने भीष्म जी को

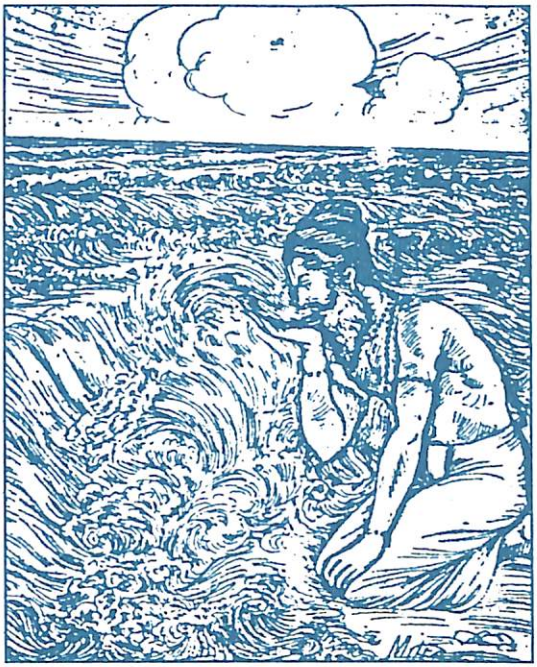

बताया कि - एक पूर्व काल में कालकेय दानव और देवता के युद्ध का वर्णन सुनाया। एक समय कालकेय दैत्य समुद्र के अन्दर जा कर छिप गये थे। देवता का समुद्र में जाना असम्भव था। इसलिए उन्हें मारने का कोई उपाय न था। देवताओं ने मिलकर महर्षि अगस्त्य से समुद्र के जल को पी लेने के लिए आग्रह किया। महर्षि ने देवताओं

की प्रार्थना पर समुद्र जल को पी लिया। देवताओं को बड़ा ही हर्ष हुआ और उन्होंने सभी दैत्यों को मार डाला। मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य का स्मरण किया तथा इस प्रकार कहा- महाभाग ! आपकी कृपा से संसार के लोगों को बड़ा सुख मिला। कालकेय दानव बड़े ही क्रूर और पराक्रमी थे, वे सब आपकी शक्ति से मारे गये। लोक रक्षक महर्षे! अब इस समुद्र को भर दीजिये। आपने जो जल पी लिया है, वह सब इसमें वापस छोड़ दीजिये।

देवताओं के ऐसा कहने पर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ज़ी बोले- वह जल तो मैंने पचा लिया, अब समुद्र को भरने के लिये आप लोग कोई दूसरा उपाय सोचें। महर्षि की बात सुनकर देवताओं को विस्मय भी हुआ और विषाद भी।

देवता लोग समुद्र को भरने के विषय में परस्पर विचार करते हुए ब्रह्मा जी के पास गये। वहां पहुंचकर उन्होंने हाथ जोड़ कर ब्रह्मा जी को प्रणाम किया और

समुद्र के पुनः भरने का उपाय पूछा। तब लोकपितामह ब्रह्मा ने उनसे कहा - 'देवताओं ! तुम सब लोग इच्छानुसार अपने-अपने अभीष्ट स्थान को लौट जाओ, अब बहुत दिनों के बाद समुद्र अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त होगा। महाराज भगीरथ अपने कुटुम्बी जनों को तारने के लिए गंगाजी को लायेंगे और उन्हीं के जल से पुनः समुद्र को भर देंगे। ऐसा कहकर ब्रह्मा जी ने देवताओं और ऋषियों को भेज दिया।

सृष्टि रचना– शिव पुराण :

'शिव पुराण में शिव ने इच्छा की, कि मैं सृष्टि करूँ तो एक 'नारायण' जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी ने देखा सब जलमय है तो उन्होंने सृष्टि की रचना करने के उद्देश्य से जल को अंजलि उठा देख, जल में पटक दी उससे एक बुदबुदा उठा और बुदबुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ उसने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र ! सृष्टि उत्पन्न कर।''

नारायण का अर्थ नारा- नीर या जल और अयन का अर्थ निवास स्थान से है अर्थात् नारायण।

नैमिषारण्य में सूत जी का आगमन, पुराण का आरम्भ तथा सृष्टि का वर्णन ब्रह्म पुराण से संकलित

नैमिषारण्य में सूत जी का आगमन, पुराण का आरम्भ तथा सृष्टि का वर्णन करते हुए सूत जी ने कहा है कि - पूर्व काल की बात है, परम पुण्यमय पवित्र नैमिषारण्य क्षेत्र बड़ा मनोहर जान पड़ता था। वहां बहुत से मुनि एकत्रित हुए थे, भांति-भांति के पुष्प उस स्थान की शोभा बढ़ा रहे थे। पीपल, पारिजात, चन्दन, अगर, गुलाब तथा चम्पा आदि अन्य बहुत से वृक्ष उसकी शोभा-वृद्धि में सहायक हो रहे थे। भांति-भांति के पक्षी, नाना प्रकार के मृगों का झुंड, अनेक पवित्र जलाशय तथा बहुत सी बावड़ियां उस वन क्षेत्र को विभूषित कर रही थीं।

सूत जी ने इसी अध्याय में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन में सर्व प्रथम जल की उत्पत्ति का उल्लेख किया है कि जो नित्य, सद्सत्स्वरूप तथा कारण भूत अव्यक्त प्रकृति है, उसी को प्रधान कहते हैं। उसी से पुरुष ने इस विश्व का निर्माण किया है। मुनिवरों ! वे समस्त प्राणियों की सृष्टि करने वाले तथा भगवान् नारायण के आश्रित हैं। प्रकृति से महत्व से अहंकार से सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए। भूतों के जो भेद हैं, वे भी उन सूक्ष्म भूतों से ही प्रकट हुए हैं। यह सनातन सर्ग है। तदनन्तर स्वयं भू भगवान् नारायण ने नाना प्रकार की प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से सबसे पहले जल की सृष्टि की। फिर जल में अपनी शक्ति का आधान किया। जल का दूसरा नाम नार है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नर से हुई है। वह जल पूर्वकाल में भगवान् का 'अयन' निवास स्थान हुआ, इसलिए वे नारायण कहलाये।

ब्रह्माजी की उत्पत्ति और ब्रह्मा जी की लोक रचना का वर्णन- श्री विष्णु पुराण से संकलित

श्री मैत्रेय एवं श्री पराशर जी का संवाद।

श्री पराशर जी बोले- प्रजापतियों के स्वामी नारायण स्वरूप भगवान् ब्रह्माजी ने जिस प्रकार प्रजा की सृष्टि की थी, वह मुझ से सुनो। पिछले कल्प का अन्त होने पर रात्रि में सो कर उठने पर सत्वगुण के उद्रेकसे युक्त भगवान् ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण लोकों को शून्यमय देखा। वे भगवान् नारायण पर है, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा, शिव आदि ईश्वरों के भी ईश्वर हैं, ब्रह्मास्वरूप हैं, अनादि हैं और सबकी उत्पत्ति के स्थान हैं। उन ब्रह्म स्वरूप श्री नारायण देव के विषय में जो इस जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के स्थान है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः॥

नर अर्थात् पुरुष -भगवान् पुरुषोत्तम से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहते हैं, वह नार जल ही उनका प्रथम अयन निवास स्थान है। इसलिये भगवान को नारायण कहा है।

श्रीकृष्ण द्वारा सृष्टि रचना करते समय जल की उत्पत्ति का वर्णन- ब्रह्मवैवर्त पुराण से संकलित

ब्रह्मखण्ड में सौति एवं सावित्री संवाद में श्रीकृष्ण द्वारा सृष्टि रचना करते समय जल की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक 'जल' की रचना की। वे अपने मुख से निःश्वास वायु के साथ जल की एक-एक बूंद गिराने लगे। मुख से निकले हुए उस बिन्दुमात्र जल ने सम्पूर्ण विश्व को आप्लावित कर दिया उसके किंचित् कणमात्र जल ने उस प्रज्वलित अग्नि को शान्त कर दिया। तभी से जल के द्वारा आग बुझने लगी। तत्पश्चात् वहां एक पुरुष का प्रादुर्भाव हुआ, जो उस अग्नि के अधिदेवता थे। फिर पूर्वोक्त जल से एक पुरुष का उत्थान हुआ, जिसका नाम वरुण हुआ। वे ही जल के अधिष्ठाता देवता और समस्त जल जन्तुओं के स्वामी हुए।

सृष्टि का संक्षिप्त वर्णन - मार्कण्डेय पुराण से संकलित

कौष्टुकि एवं मार्कण्डेय का संवाद कौष्टुकि द्वारा सृष्टि आदिकर्ता के विषय में पूछने पर मार्कण्डेय जी ने कहा- ब्रह्मन ! पदम कल्प के अन्त में जो प्रलय हुआ था, उसके बाद रात्रि बीतने पर जब सत्वगंण के उत्कर्प से युक्त श्री विष्णु स्वरूप ब्रह्मा जी सोकर उठे, उस समय उन्होंने संसार को शून्य देखा। जगत् की उत्पत्ति और संहार करने वाले ब्रह्मास्वरूप भगवान् नारायण के विषय में विद्वान पुरुष यह श्लोक कहा करते हैं -

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥

'जल नर से प्रकट हुआ है, इसलिए वह नार कहलाता है। भगवान उसमें सोते हैं- भगवान् का यह अयन है, इसलिए वे नारायण कहे गये हैं।

प्रजा की सृष्टि - एक दृष्टान्त दिया है कि जब प्रजा भूख और प्यास से व्याकुल एवं शोकातुर हो उठी तब त्रेता के आरम्भ में उनके अभीष्ट की सिद्धि हुई। उनकी इच्छा के अनुसार वर्षा हुई और वह वर्षा का जल नीची भूमि में बढ़ कर एकत्र हो लगा। उससे स्रोत, पोखरे और नदियां बन गयीं। उस जल का पृथ्वी के साथ संयोग हो, ये बिना जोते-बोये ही ग्राम्य और आरण्य- सब मिलकर चौदह प्रकार के अन्न पैदा हुए। वृक्षों और लताओं में ऋतु के अनुसार फूल और फल लगने लगे। त्रेतायुग में पहले-पहल अन्न का प्रादुर्भाव हुआ। उसी से उस युग में सब प्रजा का जीवन-निर्वाह होने लगा।

जल महत्त्व एवं प्रधानता

जल की महत्वता एवं प्रधानता का वर्णन- तपस्तीर्थ की महिमा- ब्रह्म पुराण से संकलित

ब्रह्मा जी कहते हैं- तपस्तीर्थ बहुत बड़ा तीर्थ है। वह तपस्या की वृद्धि करने वाला, समस्त अभिलाषित वस्तुओं का दाता, पवित्र तथा पितरों की प्रसन्नता को बढ़ाने वाला है। उस तीर्थ में तो पापनाशक घटना घटी है, उसे बतलाता हूँ, सुनो। ऋषियों में अग्नि और जल की श्रेष्ठता को लेकर परस्पर संवाद हुआ। एक पक्ष कहता था, जल श्रेष्ठ है और दूसरे पक्ष के लोग अग्नि की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते थे। अग्नि की श्रेष्ठता बतलाने वाली अपनी युक्तियाँ इस प्रकार उपस्थित करते थे - **'अग्नि के बिना जीवन कहां रह सकता है, क्योंकि अग्नि ही जीव रूप है। आत्मा और हविष्य भी वही है। अग्नि से ही समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है। अग्नि ने समस्त विश्व का धारण कर रखा है। अग्नि ही ज्योतिर्मय जगत् है। अतः अग्नि से बढ़कर दूसरा कोई पावन देवता नहीं है। अग्नि को ही अन्तर्ज्योति तथा परम ज्योति कहते हैं। अग्नि के बिना कोई भी वस्तु नहीं है। यह त्रिलोक ही अग्नि का धाम है। इसीलिए पांचों भूतों में अग्नि से श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है। नारी की योनि में पुरुष जो वीर्य स्थापित करता है और उसमें जो देह आदि के निर्माण की शक्ति लगती है, वह सब अग्नि ही है। अग्नि देवताओं का मुख है, अतः उससे बड़ा कुछ भी नहीं है।'**

दूसरे वेदवादी पुरुष जल को श्रेष्ठ मानते थे। उनका कहना था, **'जल से ही अन्न की उत्पत्ति होती है तथा जल से ही मनुष्य शुद्ध होता है। जल ने ही सब को धारण कर रखा है, अतः जल को माता माना गया है।**

पुराणवेताओं का कथन है, कि जल तीनों लोकों का जीवन है। जल से ही अमृत उत्पन्न हुआ है और जल से ही औषधियाँ होती हैं।

इस प्रकार एक पक्ष अग्नि को श्रेष्ठ कहता था और दूसरा जल को। यों ही मीमांसा करते हुए एक-दूसरे के विरुद्ध तर्क उपस्थित करने वाले वेद वादी ऋषि मेरे पास आकर बोले- 'भगवन्! आप तीनों लोकों के प्रभु हैं। बतलाइये, अग्नि श्रेष्ठ है या जल? मैंने कहा- दोनों ही इस जगत् में परम् पूजनीय हैं। दोनों से जगत् उत्पन्न होता है। दोनों से हव्य-काव्य और अमृत का प्राकट्य होता है। दोनों से ही जीवन है। दोनों ही शरीर को धारण करने वाले हैं। इनमें परस्पर कोई विशेषता नहीं है। दोनों समान रूप से ही श्रेष्ठ माने गये हैं।'

मेरे कथन से यह बात सिद्ध हुई कि दोनों ही श्रेष्ठ हैं, कोई एक नहीं, परन्तु वे ऋषि ऐसा ही मानते थे कि दोनों में से एक ही श्रेष्ठ है। अतः उन्हें मेरी बातों से संतोष नहीं हुआ। तब वे क्षीर सागर में शयन करने वाले शंख-चक्र गदाधारी भगवान विष्णु के पास गये और नाना प्रकार के स्रोतों से स्तुति करने लगे।

ऋषि बोले - जो भविष्य में होने वाला है, जो जन्म ले चुका है तथा जो अभी गुहा गर्भ में प्रविष्ट हुआ है, उस सम्पूर्ण भुवन को जो सदा अपनी ज्ञानदृष्टि में रखते हैं, यह चित्र विचित्र रूपों वाली समस्त त्रिलोकी अन्त में जिनके भीतर लीन होती है, जिन्हें महर्षिगण अक्षर, सनातन, अप्रमेह तथा वेदवेद्य बतलाते हैं, जिनकी शरण में गये हुए प्राणी अपने अभीष्ट पदार्थ को प्राप्त कर लेते हैं। उन परमार्थ वस्तु स्वरूप परमेश्वर की हम शरण लेते हैं। जगन्निवास! महाभूतमय जगत् में जो भूत सबसे प्रधान और श्री विष्णु स्वरूप हैं, जिसे योगी भी नहीं जान पाते, उसी का प्रतिपादन करने के लिए महर्षिगण

यहां आये हुए हैं। आप यहां सत्य को प्रकट कर दें जगदीश्वर! आप सम्पूर्ण देहधारियों के अन्तरात्मा हैं। आप ही सब कुछ हैं। आप में ही सम्पूर्ण जगत् स्थित है तथापि कितने आश्चर्य की बात है कि प्रकृति से प्रभावित होने के कारण कोई कहीं भी आपकी सत्ता का अनुभव नहीं करते। वास्तव में आप बाहर और भीतर सब ओर विद्यमान है। सम्पूर्ण विश्व के रूप में आप ही सब और उपलब्ध हो रहे हैं।

ऋषियों के इस प्रकार स्तुति करने पर जगज्जननी देवी वाक् आकाशवाणी ने कहा- 'तुम लोग तपस्या, भक्ति और नियम के साथ दोनों की आराधना करो। जिसकी आराधना से सिद्धि प्राप्त हो, वही भूत सबसे श्रेष्ठ कहा जायेगा। बहुत अच्छा, कह कर सम्पूर्ण लोकमान्य महर्षि वहां से चल दिये। वे थक गये थे। उनका अन्तःकरण खिन्न हो रहा था। उन्होंने उत्तम वैराग्य का आश्रय लिया और तपस्या करने का दृढ़ संकल्प लेकर वे सब लोग त्रिभुवन को पवित्र करने वाली जगज्जननी गोमती के तट पर आये और जलदेवता तथा अग्नि देवता की पृथक्-पृथक् पूजा करने को उद्यत हुए। जो अग्नि के पूजक थे, वे जल के पूजन में प्रवृत हुए। उस समय वहां **देवमाता देवी वाणी सरस्वती ने फिर कहा- 'जल से ही शुद्धि होती है। जो अग्नि के पूजक हैं, वे विचार तो करें - बिना जल का पूजन कैसा। जल होने पर ही मनुष्य सब कर्मों के अनुष्ठान का अधिकारी होता है। वेदवेता पुरुष जब तक शीतल जल में श्रद्धापूर्वक स्नान नहीं कर लेता, तब तक अपवित्र, मलिन एवं शुभकर्म का अनधिकारी रहता है। इसलिए जल सबसे श्रेष्ठ है। उसे माता की पदवी दी गई है अतः जल ही श्रेष्ठ है।'**

वेदवादी ऋषियों ने यह आकाशवाणी सुनी। इससे उन्हें निश्चय हो गया कि जल ही श्रेष्ठ है। जिस तीर्थ में यह ऋषिसत्र सम्पन्न हुआ, उसे तपस्तीर्थ और सत्रतीर्थ भी कहते हैं। अग्नितीर्थ और सारस्वततीर्थ भी उसी के नाम हैं।

वहां चौदह सौ पुण्यदायक तीर्थों का निवास है। उनमें किया हुआ स्नान और दान मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है। जहां आकाशवाणी ने ऋषियों का संदेह निवारण किया था, वहां सरस्वती नाम की नदी प्रकट हुई, जो गंगा में मिली है।

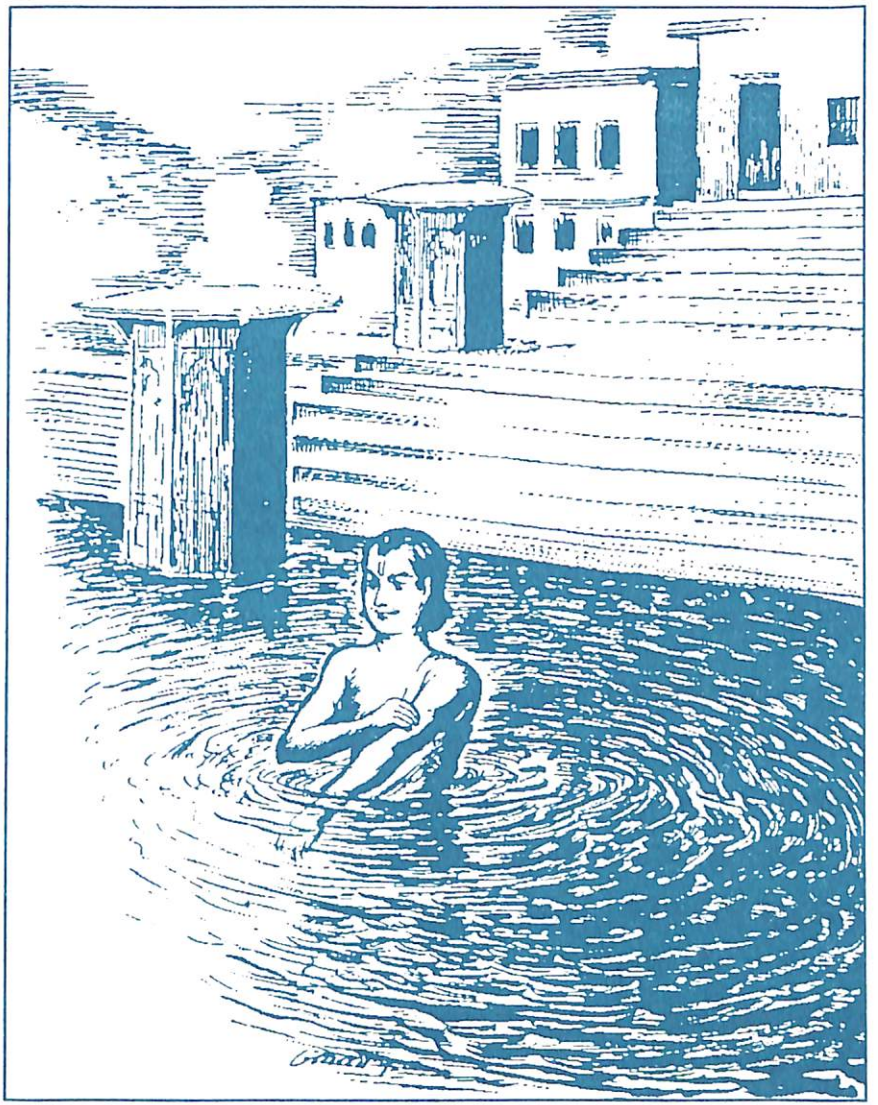

जल का साक्षात्कार

जल क्या है ? एक साक्षात्कार

मोक्ष का श्रेष्ठ साधन-ब्रह्म विद्या श्रीहरि कल्याण साधनांक से संकलित

साधना की झांकी - मन कल्पनाओं का पुंज है। सुषुप्ति में जो कल्पनाएँ विलीन रहती हैं, वे ही स्वप्न में और जागृत में उठा करती हैं और जिन वस्तुओं और घटनाओं का परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है उनका बनावटी संबंध जोड़कर व्यवहार की विशाल एवं जटिल परम्परा खड़ी कर देती है। कल्पनाओं से छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। ऐसा अनेक बार होता है। किसी दिन की कल्पनाएं बड़ी मनोरंजक और लाभप्रद होती है। इसलिए एक दिन ब्रह्मवेला में, जब कि वृत्तियों को निःसंकल्प करके मुझे शान्त-भाव से बैठा रहना चाहिए था, जिन कल्पनाओं के प्रवाह में मैं बह गया था, उनका स्मरण किया जाता है।

दरबार लगा हुआ था। बहुत से दरबारी मौन भाव से अपने-अपने स्थान पर बैठे थे। सबसे ऊंचे आसन पर अपनी धर्मपत्नी बुद्धि देवी के साथ महाराज अहंकार विराजमान थे, उस सभा के सदस्यों में मूर्तिमान रूप से दस इन्द्रिय, पांच प्राण, पाँच भूत और मन उपस्थित था। कुछ अव्यक्त रूप से थे और कुछ छोटे-मोटे दूसरे लोग भी थे, परन्तु उनका कोई विशेष महत्व नहीं था। यह विशाल सभा-मंडप और उसकी प्रत्येक क्रिया मेरी आंखों के सामने थी। परन्तु मैं कहां हूँ और किस रूप में हूँ, यह मुझे पता नहीं था, मैं केवल देख रहा था। राजा साहब ने मन को बुलाया और कहा कि यहां जितने सदस्य उपस्थित हैं, उनको

एक-एक करके मेरे सामने लाओ, मैं उनका परिचय, जीविका और उनके जीवन का उद्देश्य जानना चाहता हूँ। मन ने हाथ जोड़कर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की।

मन ने बारी-बारी से सभा में उपस्थित सदस्यों को महाराज अहंकार के सामने प्रस्तुत किया। अहंकार ने उनके विषय में जानने के लिए सवाल-जवाब किये। सभा में जल भी विराजमान थे।

मन जल के साथ उपस्थित हुआ। अहंकार - 'तुम्हारा नाम?' आगन्तुक सदस्य- 'जल।' अहंकार- 'तुम्हारी जीविका क्या है?' जल- 'मुझे चाहे जो अपने काम में लावे, मैं आपत्ति नहीं करता। पृथ्वी मुझसे स्निग्ध हो, सूर्य मेरा पान करे, वायुमण्डल मुझसे शीतल हो और मैं आवश्यकता के अनुसार उनका उपयोग कर लूं। बस, यही मेरी जीविका है। इसके लिए मुझे चिन्ता नहीं करनी पड़ती, न कोई श्रम। अहंकार- 'तुम्हारे जीवन का उद्देश्य क्या है?' जल- 'यह मैं नहीं जानता। जिसने मुझे अस्तित्व दिया है, जीवित किया है, उसी की प्रेरणा से बादल से पर्वत, पर्वत से भूमि पर, भूमि से समुद्र में और समुद्र से बादल में घुमा करता हूँ। जो घुमाता है, वह इसका रहस्य जानता होगा।' अहंकार - 'तब इस यात्रा में तुम्हें रस का अनुभव होता होगा, कभी यह बन्द हो जाये तो? जल- 'मैंने कभी नहीं चाहा था कि मुझे कोई घुमावे, यह भी नहीं चाहता कि यह घूमना बन्द हो जाये। जब घुमने-न-घूमने की इच्छा ही नहीं है, तब मेरे लिए कोई भी परिस्थिति नीरस कैसे हो सकती है?' अहंकार - तुम्हें कोई जला दे, नष्ट हो जाऊँगा।' अहंकार- 'तुम्हें दुःख नहीं होगा?' जल– 'न' बराबर ही तो है सब। जब जीना दूसरों की इच्छा से, तब मरना भी दूसरे की इच्छा से। दूसरे की इच्छा ही अपना जीवन है। न इसमें दुःख है न सुख।' अहंकार -'ठीक है, जाओ।'

जल और साधना

श्रीमद्भागवत् महापुराण से संकलित

दशम स्कन्ध, अथ विंशोऽध्यायः वर्षा और शरद ऋतु का वर्णन :- श्री शुकदेव जी एवं परीक्षित का संवाद।

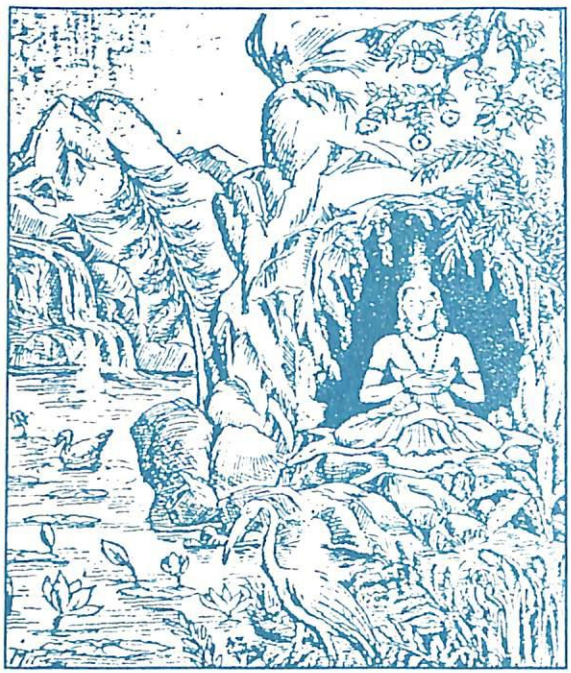

श्री शुकदेवजी कहते हैं - परीक्षित ! ग्वालबालों ने घर पहुंचकर अपनी माँ, बहिन आदि स्त्रियों से श्री कृष्ण और बलराम ने जो कुछ अद्भुत कर्म किये थे- दावानल से उनको बचाना, प्रलम्ब को मारना इत्यादि - सबका वर्णन किया। बड़े-बड़े बूढ़े गोप और गोपियां भी राम और श्याम की अलौकिक लीलाएं सुनकर विस्मित हो गयीं। वे सब ऐसा मानने लगे कि 'श्री कृष्ण और बलराम के वेश में कोई बहुत बड़े देवता ही व्रज में पधारे हैं। इसके बाद वर्षा ऋतु का शुभागम हुआ। इस ऋतु में सब प्राणियों की बढ़ती हो जाती है। उस समय सूर्य और चन्द्रमा पर

प्रकाशमय मंडल बैठने लगे। बादल, वायु, चमक और कड़क आदि से आकाश क्षुब्ध सा दीखने लगा। आकाश में नीले घने बादल घिर आते हैं, बिजली, सूर्य, चन्द्रमा और तारे ढके रहते है। इससे आकाश की ऐसी शोभा होती है जैसे ब्रह्मस्वरूप होने पर भी गुणों से ढक जाने पर जीव की होती है। सूर्य ने राजा की तरह पृथ्वी रूप प्रजा से आठ महीने तक जल का ग्रहण किया था, अब समय आने पर वे अपनी किरण करों से फिर उसे बांटने लगे। जैसे दयालु पुरुष जब देखते हैं, कि प्रजा बहुत पीड़ित हो रही है, तब वे दया परवश होकर अपने जीवन प्राण तक निछावर कर देते हैं- वैसे ही बिजली की चमक से शोभायमान घनघोर बादल तेज हवा की प्रेरणा से प्राणियों के कल्याण के लिए अपने जीवनस्वरूप जल को बरसाने लगे। जेठ-अषाढ़ की गर्मी से पृथ्वी सूख गई थी। अब वर्षा के जल से सिंचकर वह फिर हरी-भरी हो गयी- जैसे सकाम भाव से तपस्या करते समय पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है, परन्तु जब उसका फल मिलता है, तब हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। वर्षा के सायंकाल में बादलों से घना अंधेरा छा जाने पर ग्रह और तारों का प्रकाश तो नहीं दिखलायी पड़ता, परन्तु जुगनू चमकने लगते हैं - जैसे कलियुग में पाप की प्रबलता हो जाने से पाखण्ड मतों का प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त हो जाते हैं। जो मेढ़क पहले चुपचाप सो रहे थे, अब वह बादलों की गरज सुनकर टर्र-टर्र करने लगे, जैसे नित्य नियम से निवृत होने पर गुरु के आदेशानुसार ब्रह्मचारी लोग वेदपाठ करने लगते हैं। छोटी-छोटी नदियां, जो जेठ आषाढ़ में बिलकुल सूखने को आ गयी थीं, वे अब उमड़-घुमड़ कर अपने घेरे से बाहर बहने लगीं- जैसे अजितेन्द्रिय पुरुष के शरीर और धन सम्पत्तियों का कुमार्ग में उपयोग होने लगता है। पृथ्वी पर कहीं-कहीं हरी-हरी घास की हरियाली थी, तो कहीं-कहीं बीरबहुटियों की लालिमा और कहीं-कहीं बरसाती छतों 'सैदुकुकुरमुते' के कारण वह सफेद मालूम देती थी। इस प्रकार उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो किसी राजा की रंग-बिरंगी सेना हो। सब खेत अनाजों से भरेपूरे लहला रहे थे। उन्हें देखकर

किसान तो मारे आनन्द के फूले नहीं समा रहे थे, परन्तु सब कुछ प्रारब्ध के अधीन है- यह बात न जानने वाले धनिकों के चित में बड़ी जलन हो रही थी कि अब हम इन्हें अपने पंजे में कैसे रख सकेंगे। नये बरसाती जल के सेवन से सभी जलचर और थलचर प्राणियों की सुन्दरता बढ़ गई थी, जैसे भगवान की सेवा करने से बाहर और भीतर के दोनों ही रूप सुधड़ जो जाते हैं। वर्षा ऋतु में हवा के झोंकों से समुद्र एक तो यों ही उत्ताल तरंगों से युक्त हो रहा था, अब नदियों के संयोग से वह और क्षुब्ध हो उठा- ठीक वैसे ही जैसे वासनायुक्त योगी चित्त विषयों का सम्पर्क होने पर कामनाओं के उभार से भर जाता है। मूसलाधार वर्षा की चोट खाते रहने पर भी पर्वतों को कोई व्यथा नहीं होती थी- जैसे दुखों की भरमार होने पर भी उन पुरुषों को किसी प्रकार की व्यथा नहीं होती, जिन्होंने अपना चित्त भगवान को ही समर्पित कर रखा है। जो मार्ग कभी साफ नहीं किये जाते थे, वे घास से ढक गये और उनको पहचानना कठिन हो गया - जैसे जब द्विजाति वेदों का अभ्यास नहीं करते, तब कालक्रम से वे उन्हें भूल जाते हैं।

'मार्गा बभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यासंस्कृताः।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव॥

यद्यपि बादल बड़े लोकोपकारी हैं,फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं- ठीक वैसे ही, जैसे चपल अनुरागवाली कामिनी स्त्रियाँ गुणी पुरुषों के पास भी स्थिर भाव से नहीं रहती। आकाश मेघों के गर्जन-तर्जन से भर रहा था। उसमें निर्गुण 'बिना डोरी के' इन्द्र धनुष की वैसी ही शोभा हुई, जैसी सत्य रज आदि गुणों के क्षोभ से होने वाले विश्व के बखेड़े में निर्गुण ब्रह्म की। यद्यपि चन्द्रमा की उज्ज्वल चाँदनी से बादलों का पता चलता था, फिर भी उन बादलों ने ही चन्द्रमा को ढककर शोभाहीन बना दिया था- ठीक वैसे ही पुरुष के आभास से आभासित होने वाला अहंकार ही उसे ढककर प्रकाशित नहीं होने देता। बादलों के आगमन से मोरों का रोम-रोम खिल रहा था, वे अपनी कुहूक

और नृत्य के द्वारा आनन्दोत्सव मना रहे थे- ठीक वैसे ही जैसे गृहस्थी के जंजाल में फंसे हुए लोग, जो अधिकतर तीनों तापों से जलते और घबराते रहते हैं, भगवान के भक्तों के शुभागमन से आनन्दमग्न हो जाते हैं। जो वृक्ष जेठ-आषाढ़ में सूख गये थे, वे अब अपनी जड़ों में जल पीकर पत्ते-फूल तथा डालियों से खूब सज-धज गये- जैसे सकाम भाव से तपस्या करने वाले पहले तो दुर्बल हो जाते हैं, परन्तु कामना पूरी होने पर मोटे-तगड़े हो जाते हैं।

परीक्षित ! तालाबों के तट, कांटे-कीचड़ और जल के बहाव के कारण प्रायः अशान्त ही रहते थे, परन्तु सारस उन्हें एक क्षण के लिए भी नहीं छोड़ते थे- जैसे अशुद्ध हृदय वाले विषयी पुरुष काम धन्धों की झंझट से कभी छुटकारा नहीं पाते। फिर भी घरों में पड़े रहते हैं। वर्षा ऋतु में इन्द्र की प्रेरणा से मूसलाधार वर्षा होती है, इससे नदियाँ के बांध और खेतों की मेडें टूट-फूट जाती हैं- जैसे कलियुग में पाखंडियों के तरह-तरह के मिथ्या मतवादों से वैदिक मार्ग की मर्यादा ढीली पड़ जाती है। वायु की प्रेरणा से घने बादल प्राणियों के लिये अमृतमय जल की वर्षा करने लगते हैं- जैसे ब्राह्मणों की प्रेरणा से धनी लोग समय-समय पर दान के द्वारा प्रजा की अभिलाषाएं पूर्ण करते हैं। वर्षा ऋतु में वृन्दावन इसी प्रकार शोभायमान और पके हुए खजूर तथा जामुनों से भर रहा था उसी वन में विहार करने के लिए श्याम और बलराम ने ग्वालबाल और गोओं के साथ प्रवेश किया। गौएँ अपने थनों के भारी भार के कारण बहुत ही धीरे-धीरे चल रही थीं। जब भगवान कृष्ण उनका नाम लेकर पुकारते, तब वह प्रेमवश होकर जल्दी-जल्दी दौड़ने लगतीं, उस समय उनके थनों से दूध की धारा गिरती जाती थीं, भगवान ने देखा कि वनवासी भील और भीलनियाँ आनन्दमग्न हैं। वृक्षों की पंक्तियाँ मधुधारा उंडेल रही है। पर्वतों से झर-झर करते झरने झर रहे हैं। उनकी आवाज बड़ी सुरीली जान पड़ती है और साथ ही वर्षा होने पर छिपने के लिए बहुत सी गुफाएं भी हैं। जब वर्षा होने लगती, तब श्री कृष्ण कभी

किसी वृक्ष की गोद में या खोखर में जा छिपते। कभी-कभी किसी गुफा में ही जा बैठते और कभी कन्द-मूल फल खाकर ग्वाल बालों के साथ खेलते रहते। कभी जल के पास ही किसी चट्टान पर बैठ जाते और बलराम जी तथा ग्वालों के साथ मिलकर घर से लाया हुआ दही-भात, दाल-शाक आदि के साथ खाते। वर्षा ऋतु में बैल, बछड़े और थनों के भारी भार से थकी हुई गौएं थोड़ी ही देर में भरपेट घास चर लेतीं और हरी-हरी घास पर बैठकर ही आंख मूंदकर जुगाली करती रहतीं। वर्षा ऋतु की सुन्दरता अपार थी। वह सभी प्राणियों को सुख पहुंचा रही थी। इसमें संदेह नहीं कि वह ऋतु गाय, बैल, बछड़े- सब-के-सब भगवान् की लीला के ही विलास थे। फिर भी उन्हें देखकर भगवान बहुत प्रसन्न होते और बार-बार उनकी प्रशंसा करते।

इस प्रकार श्याम और बलराम बड़े आनन्द से ब्रज में निवास कर रहे थे। इसी समय वर्षा बीतने पर शरद ऋतु आ गई। अब आकाश में बादल नहीं रहे, जल निर्मल हो गया, वायु बड़ी धीमी गति से चलने लगी। शरद ऋतु कमलों की उत्पत्ति से जलाशयों के जल ने अपनी सहज स्वच्छता प्राप्त कर ली- ठीक वैसे ही, जैसे योग भ्रष्ट पुरुषों का चित्त फिर से योग का सेवन करने से निर्मल हो जाता है। शरद ऋतु ने आकाश के बादल, वर्षाकाल के बढ़े हुए जीव, पृथ्वी की कीचड़ और जल के मटमैलेपन को नष्ट कर दिया- जैसे भगवान की भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ और संन्यासियों के सब प्रकार के कष्टों और अशुभों का झटपट नाश कर देती है। बादल अपने सर्वस्व का दान करके उज्ज्वल कान्ति से सुशोभित होने लगे- ठीक वैसे ही, जैसे लोक-परलोक, स्त्री-पुरुष और धन-सम्पत्ति सम्बन्धी चिन्ता और कामनाओं का परित्याग कर देने पर संसार के बंधन से छूटे हुए परम शान्त संन्यासी शोभायमान होते हैं। अब पर्वतों से कहीं-कहीं झरने झरते थे- जैसे ज्ञानी पुरुष समय पर अपने अमृतमय ज्ञान का दान किसी अधिकारी को कर देते हैं और किसी-किसी को नहीं भी करते। छोटे-छोटे गड्ढों में भरे हुए जल के जलचर यह नहीं जानते कि इस गड्ढ़ों का

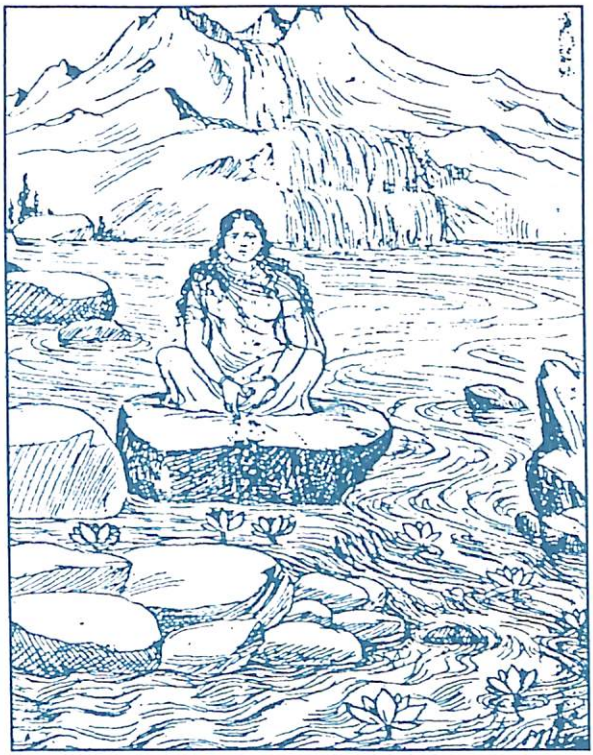

जल दिन पर दिन सूखता जा रहा है- जैसे कुटुम्ब के भरण-पोषण में भूले हुए मूढ़ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण-क्षण क्षीण हो रही है। थोड़े जल में रहने वाले प्राणियों को शरद्कालीन सूर्य की प्रखर किरणों से बड़ी पीड़ा होने लगी- जैसे अपनी इन्द्रियों के वश में रहने वाले कृपण एवं दरिद्र कुटुम्बी को तरह-तरह के ताप सताते ही रहते हैं। पृथ्वी धीरे-धीरे अपना कीचड़ छोड़ने लगी और घास-पात धीरे-धीरे अपनी कच्चाई छोड़ने लगे- ठीक वैसे ही विवेक-संपन्न साधक धीरे-धीरे शरीर आदि अनात्म पदार्थों में से 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' यह अहंता और ममता छोड़ देते हैं। शरद् ऋतु में समुद्र का जल स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया- जैसे मन के निःसंकल्प हो जाता है। किसान खेतों की मेंढ़ मजबूत करके जल का बहता रोकने लगे- जैसे योगीजन अपनी इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोककर, प्रत्याहार के द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञान की रक्षा करते हैं। शरद् ऋतु में दिन के समय बड़ी धूप होती, लोगों को बहुत कष्ट होता, परन्तु चन्द्रमा रात्रि के समय लोगों का सारा संताप वैसे ही हर लेते - देहभिमान से होने वाले दुःख को ज्ञान और भगवद्विरह से होने वाले गोपियों के दुःख को श्री कृष्ण नष्ट कर देते हैं। जैसे वेदों के अर्थ को स्पष्ट रूप से जानने वाला

सत्वगुणी चित्त अत्यन्त शोभायमान होता है, वैसे ही शरद् ऋतु में रात के समय मेघों से रहित निर्मल आकाश तारों की ज्योति से जगमगाने लगा।

परीक्षित ! जैसे पृथ्वी तल में यदुवंशियों के बीच यदुपति भगवान् श्री कृष्ण की शोभा होती है, वैसे ही आकाश में तारों के बीच पूर्ण चन्द्रमा पूर्ण सुशोभित होने लगा। फूलों से लदे हुए वृक्ष और लताओं में होकर बड़ी होती और न अधिक ठंडी होती और न अधिक गरम। उस वायु के स्पर्श से सब लोगों की जलन तो मिट जाती, परन्तु गोपियों की जलन और भी बढ़ जाती, क्योंकि उनका चित्त उनके हाथ में नहीं था, श्री कृष्ण ने उन्हें चुरा लिया था, शरद् ऋतु में गौएँ, हरिनियाँ, चिड़ियाँ और नारियाँ ऋतुमति-सन्तानोत्पत्ति की कामना से युक्त हो गयीं तथा सांड, पक्षी और पुरुष उनका अनुसरण करने लगे- ठीक वैसे ही जैसे समर्थ पुरुष के द्वारा की हुई क्रियाओं का अनुसरण उनके फल करते हैं।

परीक्षित ! जैसे राजा के शुभागमन से डाकू, चोरों के सिवा और सब लोग निर्भय हो जाते हैं, वैसे ही सूर्योदय के कारण कुमुदिनी 'कुई या काई' के अतिरिक्त और सभी प्रकार के कमल खिल गये। उस समय बड़े-बड़े शहरों और गांव में नवान्नप्राशन और इन्द्रसंबंधी उत्सव होने लगे। खेतों में अनाज पक गये और पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी की उपस्थिति से अत्यन्त सुशोभित होने लगी। साधना करके सिद्ध हुए पुरुष जैसे समय आने पर अपने देव आदि शरीरों को प्राप्त होते हैं, वैसे ही वैश्य, संन्यासी, राजा और स्नातक- जो वर्षा के कारण एक स्थान पर रुके हुए थे- वहां से चल कर अपने-अपने अभीष्ट काम-काज में लग गये।

मोक्ष का श्रेष्ठ साधन ब्रह्म विद्या श्रीहरि कल्याण साधनांक से संकलित

सलिल एको द्रष्टाद्वैतो भवत्यषे ब्रह्मलोकः सम्राडिति हैनमनुशशास याज्ञवल्क्य एषास्य परमा गतिरेषास्य परमा सम्पदेषेऽस्य परमो लोक एषोऽस्य परम आनन्दः

'जो सलिल 'जल' के समान अत्यन्त स्वच्छ, शुद्ध, माया-मलरहित है, एक अद्वैत, अविपरिलुप्त, स्वात्मज्योतिरूप दृष्टिका द्रष्टा है, यही ब्रह्म विद्वान होता है, यही ब्रह्मरूप स्वप्रकाश लोक है, हे सम्राट् जनक ! यही इसकी परमगति है, यही इसका परम आनन्द है। इस प्रकार याज्ञवल्क्य महर्षि ने राजा जनक के प्रति मोक्ष स्वरूप का उपदेश दिया।

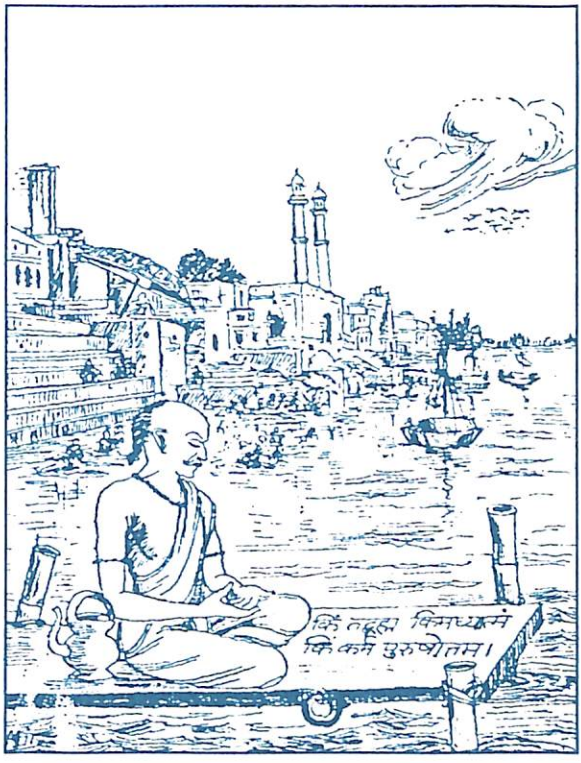

श्रीहरि कल्याण साधनांक से संकलित

विचित्र साधन- लीला-वैचित्र्य के अनुसार केवल मात्रा में है। देखो- एक झील है, एक फाटक के द्वारा वह एक तालाब से संयुक्त है। झील परमात्मा है, तालाब जीवात्मा है, झील ही का जल तालाब में आता है, दोनों के बीच में केवल एक फाटक है जो पानी के देने-रोकने पर अधिकार रखता है। पानी दोनों में एक ही है, पर मात्रा में भेद है। जैसे तालाब अपना पानी झील से पाता है, वैसे ही जीवात्मा अपना सर्वस्व परमात्मा से ही एक दिव्य प्रवाह के द्वारा पाता है, जैसे फाटक झील के पानी को तालाब में जाने से रोकता है, वैसे ही जीवात्मा का 'अहं' परमात्मा के दिव्य प्रवाह को रोकता है।

अकाल में जल की महत्वता

अकाल में जल की महत्वता-कोटिरुद्रसंहिता

–शिव पुराण से संकलित

अक्षय जल प्राप्त करके ऋषियों के कष्ट की रक्षा करना - सूत जी एवं मुनिजनों का संवाद, सूत जी कहते हैं - मुनिवरो ! सुनो, मैंने सद्गुरु व्यास जी के मुख से जैसे सुनी है, उसी रूप में एक पाप नाशक कथा तुम्हें सुना रहा हूँ। पूर्व काल की बात है, गौतम नाम के विख्यात एक श्रेष्ठ ऋषि रहते थे, जिनकी परम धार्मिक पत्नी का नाम अहिल्या था। दक्षिण दिशा में जो ब्रह्म गिरि है, वहीं उन्होंने दस हजार वर्ष तक तपस्या की थी। उत्तम व्रत का पालन करने वाले महर्षियों ! एक समय वहां सौ वर्षों तक बड़ा भयानक अवर्षण हो गया। सब लोग महान् दुख में पड़ गये। इस भूतल पर कहीं गीला पत्ता भी दिखाई नहीं देता था। फिर जीवों का आधारभूत जल कहां से दृष्टिगोचर होता। उस समय मुनि, मनुष्य, पशु, पक्षी और मृग- सब वहां से दसों दिशाओं को चले गये। तब गौतम ऋषि ने छः महीने

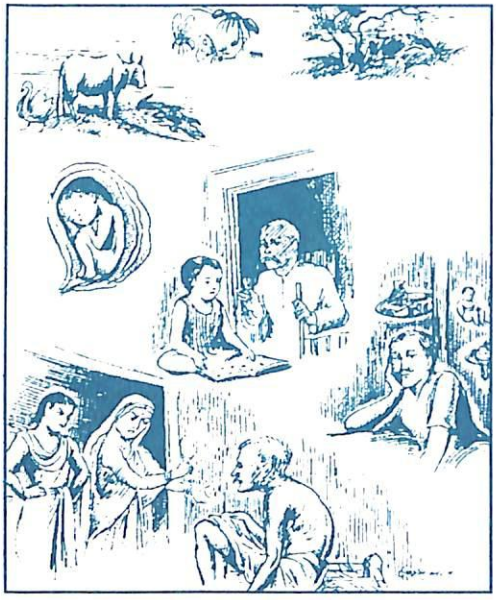

तक तप करके वरुण को प्रसन्न किया। वरुण ने प्रकट होकर वर मांगने को कहा- ऋषि ने वृष्टि के लिए प्रार्थना की, वरुण ने कहा- 'देवताओं के विधान के विरुद्ध वृष्टि न करके मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार तुम्हें सदा अक्षय रहने वाला जल देता हूँ। तुम एक गढ्डा तैयार करो। उनके ऐसा कहने पर गौतम ने एक हाथ गहरा गढ्डा खोदा और वरुण ने उसे दिव्य जल के द्वारा भर दिया तथा परोपकार से सुशोभित होने वाले मुनिश्रेष्ठ गौतम से कहा - 'महामुने ! कभी क्षीर्ण ने होने वाला यह जल तुम्हारे लिए तीर्थ रूप होगा और पृथ्वी पर तुम्हारे ही नाम से इसकी ख्याति होगी। यहां किये हुए दान, होम, तप, देवपूजन तथा पितरों का श्राद्ध सभी अक्षय होंगे।

ऐसा कहकर उन महर्षि से प्रशंसित हो वरुण देव अन्तर्धान हो गये। उस जल के द्वारा दूसरों का उपकार करके महर्षि गौतम को भी बड़ा सुख मिला। महात्मा पुरुष का आश्रय मनुष्यों के लिये महत्व की ही प्राप्ति कराने वाला होता है। महान् पुरुष ही महात्मा के उस स्वरूप को देखते और समझते हैं, दूसरे अधम मनुष्य नहीं। मनुष्य जैसे पुरुष का सेवन करता है। वैसा ही फल पाता है। महान् पुरुष की सेवा से महत्ता मिलती है और क्षुद्र की सेवा से क्षुद्रता। उत्तम पुरुषों का यह स्वभाव ही है कि वे दूसरों के दुःख को नहीं सहन कर पाते। अपने को दुःख प्राप्त हो जाये, इसे भी स्वीकार कर लेते हैं किन्तु दूसरों के दुःख का निवारण ही करते हैं। दयालु, अभिमानशून्य और जितेन्द्रिय ये पुण्य के चार खम्भे हैं, जिनके आधार पर यह पृथ्वी टिकी हुई है।

तदनन्तर गौतम जी वहां उस परम दुर्लभ जल को पाकर विधिपूर्वक नित्य नैमितिक कर्म करने लगे। उन मुनिश्वर ने वहां नित्य होम की सिद्धि के लिए धान, जौ और अनेक प्रकार के नीवार बोआ दिये। तरह-तरह के धान्य, भांति-भांति के वृक्ष और अनेक प्रकार के फल-फूल वहां लहलहा उठे। यह समाचार सुनकर वहां दूसरे-दूसरे सहस्त्रों ऋषि-मुनि, पशु-पक्षी तथा बहुसंख्यक जीव जाकर रहने लगे। वह वन इस भूमंडल में बड़ा सुन्दर हो गया। उस अक्षय जल

के संयोग से अनावृष्टि वहां के लिए दुःखदायिनी नहीं रह गयी। उस वन में अनेक शुभकर्म-परायण ऋषि अपने शिष्य, भार्या और पुत्र आदि के साथ वास करने लगे। उन्होंने कालक्षेप करने के लिए वहां धान बोआ दिये। गौतम जी के प्रभाव से उस वन में सब और आनन्द छा गया।

अक्षय जल एवं सरसब्ज वन एवं भूमि पर ऋषि मुनियों के द्वारा कब्जा, कोटिरुद्रसंहिता शिव पुराण से संकलित - सूत जी एवं मुनिजनों का संवाद

आश्रम में आये ऋषि पत्नियों के साथ जल के प्रसंग पर गौतम की पत्नी अहिल्या से कुछ विवाद हुआ होगा। ऋषि पत्नियों ने अपने पतियों से कहा, तो वे उस घटना को लेकर गौतम जी से द्वेष रखने लगे। गौतम जी के अनिष्ट की इच्छा से सभी गणेश की आराधना करने लगे। भगवान् गणेश ने ऋषियों को दर्शन दिया और वर मांगने के लिए कहा। सभी ऋषियों ने गौतम का अनिष्ट करने के लिए वर मांगा। गणेश जी ने सभी ऋषिगणों को समझाया और दूसरा वर मांगने को कहा। लेकिन ऋषियों ने दूसरा वर मांगने से इनकार कर दिया तो गणेश जी ने गौतम जी के शुभ कल्याण की इच्छा से वर दे दिया। वर के प्रभाव से गौतम जी से गौहत्या हुई और ऋषियों ने गौहत्या के आरोप में आश्रम से निकाल दिया। गौतम जी को ऋषियों के दुर्व्यवहार के कारण अपना आश्रम छोड़ना पड़ा। अन्य स्थान पर रहकर गौहत्या पाप मुक्ति के लिए भगवान शिव की आराधना लीन हो गये। शिवजी ने गौतम जी को दर्शन देकर उन्हें पाप मुक्त किया।

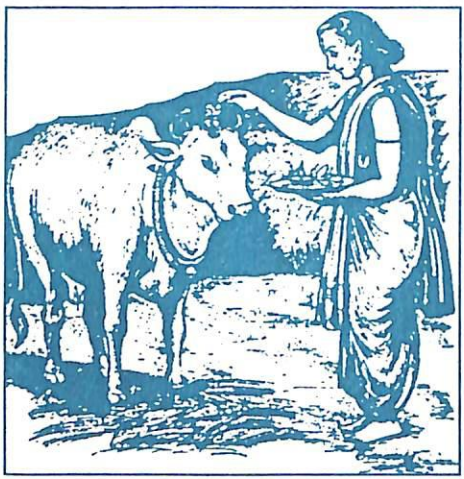

पौराणिक जल संरक्षण परम्परा

हमारे धार्मिक ग्रंथों में जल संरक्षण कार्य को इस भूमि पर सबसे अच्छा और आवश्यक कार्य माना गया है। जल संरक्षण की महत्वत्ता विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न संदर्भों में देखने को मिलती। इसी से अन्दाज लगाया जा सकता है कि हमारे ऋषि मुनियों ने समाज को प्रकृति से सतत् जोड़ने और कर्त्तव्य-परायण बनाने के जल संरक्षण से अच्छा कोई दूसरा कार्य नहीं बतलाया। जल संरक्षण कार्य इस भू-लोक में तो साध्य है ही, इसके साथ ही साथ, परलोक में तृप्तिकारक और स्वर्ग में ले जाने का साधन और साध्य दोनों है। यहां विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में से भगवान्, ब्रह्म ऋषि, देवगण, देव ऋषि-मुनिगणों, राजा और मनुष्य आदि के दृष्टांत एवं आपसी तर्कसंगत संवादों को लिया है।

जल संरक्षण में सामर्थ्य के अनुसार योगदान देने वाले छोटे पशु-पक्षी जीव से लेकर साक्षात्

विष्णु भगवान ने भी सृष्टि रचना के अतिरिक्त जगत् कल्याण के लिए स्वयं अपने चक्र सुदर्शन से चक्र सरोवर का निर्माण कर समाज में जल-संरक्षण का संदेश प्रवाहित किया। आज भी चक्र तीर्थ के रूप में समाज में व्याप्त है। ब्रह्मा जी द्वारा निर्मित पुष्कर आज दुनिया का पर्यटन स्थान बना हुआ है। आज पुष्कर, पुष्कर तीर्थ बन गया है।

पद्म पुराण में चक्रतीर्थ, पुष्कर से लेकर एक छोटी चिड़िया के द्वारा बनाये गये दो अंगुल के खड्डे से समाज में जल-संरक्षण कार्य के प्रति प्रेरित करने का अति आवश्यक दृष्टांत है।

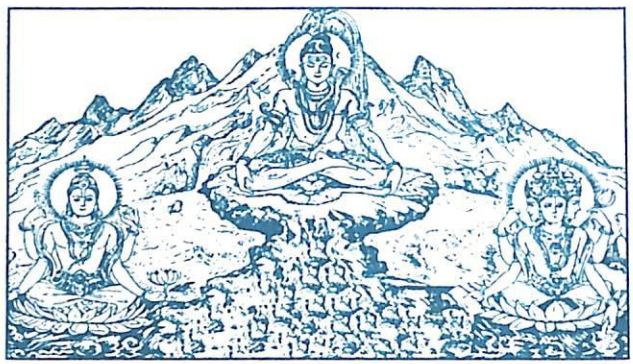

पद्म पुराण का प्रारम्भ ही पुष्कर स्तुति से होता है, इससे अंदाज लगाया जा सकता है कि हमारे पुराणों में जल संरक्षण की परम्परा का कितना महत्व रहा है और समाज में कैसे समाहित हुआ है। आज भी समाज अपनी पौराणिक जल-संरक्षण की परम्पराओं को भूला नहीं है और न भुलाया जा सकता है। आज भी जल संरक्षण के लिए समाज अपने स्तर से पूरा प्रयासरत है। हमारे पुराणों में जल संरक्षण से संबंधित तड़ाग, तालाब, जलाशय, पुष्कर, बावड़ी, वापी, कुआँ आदि की विविध प्रकार से प्रतिष्ठा विधियाँ एवं इनका जीवजगत् के कल्याण के लिए माहात्म्य बतलाया है।

जलाशय स्तुति-सृष्टि खण्ड-पद्म पुराण

स्वच्छं चन्द्राकदातं करिकरमकरक्षोभसंजातफेनं
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रततनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः।
ऊँ काराल डकृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं
संभोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं नः पुनातु॥

पद्म पुराण का प्रारम्भ उक्त श्लोक से हुआ है जिसका भावार्थ है कि जो चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और स्वच्छ है, जिसमें हाथी सूंड के समान आकार वाले नाकों के इधर-उधर वेगपूर्वक चलने-फिरने से फेन पैदा होता रहता है, ब्रह्माजी के प्रादुर्भाव की कथा-वार्ता में लगे हुए व्रत-नियम-परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सदा सेवन करते हैं, ऊँ कार जप से विभूषित त्रिभुवन गुरु ब्रह्मा जी ने जिसे अपनी दृष्टि से पवित्र किया है, जो पीने में स्वादिष्ट है और अपनी विशालता के कारण रमणीय जान पड़ता है, वह पुष्कर तीर्थ का पापहारी जल हम लोगों को पवित्र करे।

जलाशय, तड़ाग, बावड़ी, वापी, कुआँ आदि की प्रतिष्ठा, विभिन्न विधियाँ, पुराणानुसार तड़ाग की प्रतिष्ठा विधि- पद्म पुराण

भीष्म जी ने कहा- ब्रह्मन ! अब मुझे तालाब, कुआँ, बावड़ी, पुष्करिणी, बगीचा, प्रतिष्ठा आदि का विधान बतलाइये।

पुलस्त्यजी बोले - महाबाहो ! सुनो, तालाबों आदि की प्रतिष्ठा का जो विधान है, उसका इतिहास-पुराणों में इस प्रकार वर्णन हैं। उत्तरायण आने पर शुभ शुक्ल पक्ष में ब्राह्मण द्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा लें। उस दिन ब्राह्मणों का वरण करें और तालाब के समीप, जहां कोई अपवित्र वस्तु न हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर वेदी बनायें। वेदी सब ओर समतल हो और चारों दिशाओं में उसका मुख हो, फिर सोलह हाथ का मण्डप तैयार करायें। जिसके चारों तरफ एक-एक दरवाजा हो। वेदी के सब ओर कुण्डों का निर्माण करायें। कुण्डों की संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिए। कुण्डों की चौड़ाई एक-एक रत्निकी हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओं से सुशोभित

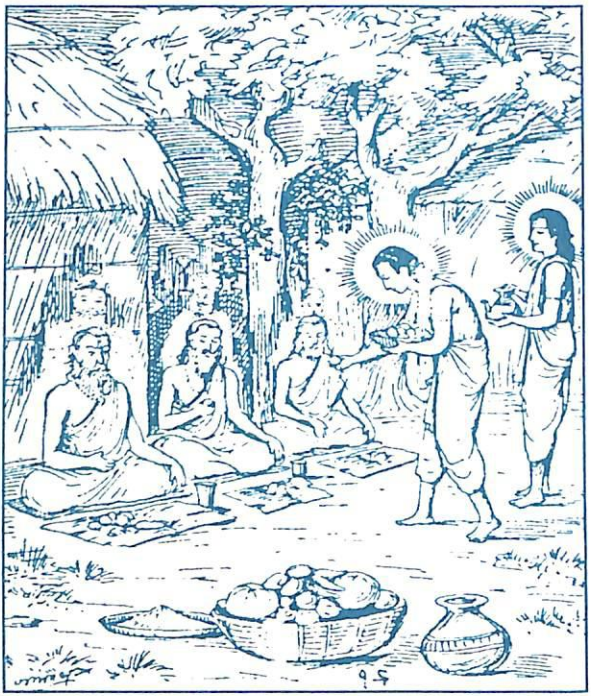

हों। उनमें यथा स्थान योनि और मुख भी होने चाहिए। योनि की लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अंगुल की हो, मेखलाएं तीन पर्व ऊँची और एक हाथ लम्बी होनी चाहिए। वे चारों ओर से एक समान- एक रंग की बनी हों। सब के समीप ध्वजाएं और पताकाएँ लगाई जायें। मण्डप के चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर पाकड़ और बरगद की शाखाओं के दरवाजे बनाये जायें। वहां आठ होता, आठ द्वारपा तथा आठ जप करने वाले ब्राह्मणों का वरण किया जाये। वे सभी ब्राह्मण वेदों के पारगामी विद्वान होने चाहिए। सब प्रकार के शुभ लक्षणों से सम्पन्न मन्त्रों के ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणों को ही इस कार्य में नियुक्त करना चाहिए। प्रत्येक कुण्ड के पास कलश, यज्ञ सामग्री, निर्मल आसन और दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें।

तदन्तर प्रत्येक देवता के लिए नाना प्रकार की बलि 'दही, अक्षत, आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ' उपस्थित करें। विद्वान आचार्य मन्त्र पढ़ कर उन सामग्रियों के द्वारा पृथ्वी पर सब देवताओं के लिए बलि समर्पण करें। अरत्नि के बाराबर एक यूप 'यज्ञ स्तम्भ' स्थापित किया जाए, जो किसी दूध वाले, वृक्ष की शाखा से बना हुआ हो।

ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुष को यजमान के शरीर के बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिए। उसके बाद पच्चीस ऋत्विजों का वरण करके उन्हें सोने के आभूषणों से विभूषित करें। सोने के बने कुण्डल, बाजूबन्द, कड़े, अंगूठी, पवित्र तथा नाना प्रकार के वस्त्र - ये सभी आभूषण प्रत्येक ऋत्विज को बराबर-बराबर दें और आचार्य को दूना अर्पण करें। इसके सिवाय उन्हें शय्या तथा अपने को प्रिय लगने वाली वस्तुएं भी प्रदान करें। सोने का बना हुआ कछुवा और मगर चांदी के मत्स्य और दुन्दुभ, तांबे के केकड़ा और मेढ़क तथा लोहे के दो सूँस बनवाकर सबको सोने के पात्र में रखें। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानों की बतायी हुई विधि के अनुसार सर्वोषधि-मिश्रित जल से स्नान करके श्वेत वस्त्र

और श्वेत माला धारण करें। फिर श्वेत चन्दन लगा कर पत्नी और पुत्र-पौत्रों के साथ पश्चिम द्वार से मण्डप में प्रवेश करें। उस समय मांगलिक शब्द होने चाहिए और भेरी आदि बाजे बजने चाहिए।

तदन्तर विद्वान पुरुष पाँच रंग के चूर्णों से मण्डल बनायें और उसमें सोलह अरों से युक्त चक्र चिह्नित करें। उसके गर्भ में कमल का आकार बनाये। चक्र देखने में सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओर से गोल होने के साथ ही मध्य भाग में अधिक शोभायमान जान पड़ता हो। उस चक्र को वेदी के ऊपर स्थापित करके उसके चारों ओर प्रत्येक दिशा में मंत्र-पाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालों की स्थापना करें। फिर मध्य भाग में वरुण संबंधी मंत्रों का उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करें और उसी के ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वती की भी स्थापना करें। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकों की शान्ति के लिए भूत समुदाय को स्थापित करें। इस प्रकार पुष्प, चन्दन और फलों के द्वारा सबकी स्थापना करके कलशों के भीतर पंचरत्न छोड़कर उन्हें वस्त्रों से अविष्टित कर दें। फिर पुष्प और चन्दन के द्वारा उन्हें अलंकृत करके द्वार रक्षा के लिए नियुक्त ब्राह्मणों से वेदपाठ करने के लिए कहें और स्वयं आचार्य का पूजन करें। पूर्व दिशा की ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिण द्वार पर छः यजुर्वेदी, पश्चिम द्वार पर दो सामवेदी तथा उत्तर द्वार पर दो अथर्ववेदी विद्वानों को रखना चाहिए। यजमान मंडल के दक्षिण भाग में उत्तरभिमुख होकर बैठे और द्वार-रक्षक विद्वानों से कहें- 'आप लोग वेद पाठ करें। फिर यज्ञ कराने वाले आचार्य कहे- 'आप यज्ञ प्रारम्भ करें। तत्पश्चात् जप करने वाले ब्राह्मणों से कहे- 'आप लोग उत्तम जप करते रहें। मंत्रज्ञ पुरुष अग्नि को प्रज्वलित करें तथा मंत्र पाठपूर्वक घी और समिधाओं की आहुति दें। ऋत्विजों को भी वरुण संबंधी मंत्रों द्वारा सब ओर से हवन करना चाहिए। ग्रहों के निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञकर्म में इन्द्र, शिव, मरुन्दण और लोकपालों के निमित्त भी विधिपूर्वक होम करें।

पूर्व द्वार पर ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्ति, रुद्र पवमान, सुमंगल तथा पुरुष संबंधी सूक्तों का पृथक्-पृथक् जप करें। दक्षिणी द्वार पर स्थित यजुर्वेदी विद्वान इन्द्र, रुद्र, सोम, कूठमाण्ड, अग्नि तथा सूर्य-संबंधी सूक्तों का जाप करें। पश्चिम द्वार पर रहने वाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम, पुरुषसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम, वामदेव्यसाम, बृहत्साम, रौरवसाम, स्थन्तरसाम, गोव्रत, विकीर्ण, रक्षोन्ध और यम संबंधी सामों का गान करें। उत्तर द्वार के अथर्ववेदी विद्वान मन ही मन भगवान् वरुणदेव की शरण लें, शान्ति और पुष्टि -संबंधी मंत्रों का जप करें। इस प्रकार पहले दिन मंत्रों द्वारा देवताओं की स्थापना करके हाथी और घोड़े के पैरों नीचे की जिस रथ पर चलता हो- ऐसी सड़क की, बॉबी की, दो नदियों के संगम की, गोशाला की तथा साक्षात् गौओं के पैर के नीचे की मिट्टी लेकर कलशों में छोड़ दें।

उसके बाद सर्वोषधि, गोरोचन, सरसों के दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़ें। फिर पंचगव्य 'दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र' मिलाकर उन कलशों के जल में यजमान का विधिपूर्वक अभिषेक करें। अभिषेक के समय विद्वान् पुरुष वेदमंत्रों का पाठ करते रहें। इस प्रकार शास्त्रविधित कर्म के द्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभात का उदय होने पर हवन के अन्त में ब्राह्मणों को सौ, पचास, छत्तीस, अथवा पच्चीस गौ दान करें। तदनन्तर शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आने पर वेद पाठ, संगीत तथा नाना प्रकार के बाजों की मनोहर ध्वनि के साथ एक गौ को सुवर्ण से अलंकृत करके तालाब के जल से युक्त सोने का पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदि को रखे और उसे किसी बड़ी नदी से मंगायें हुए जल से भर दें। फिर पात्र को दही-अक्षत् से विभूषित करें।

वेद और वेदांगों के विद्वान चार ब्राह्मण हाथ से पकड़ें और यजमान की प्रेरणा से उसे उत्तराभिमुख उलट कर तालाब के जल में डाल दें। इस प्रकार 'आपोः मयो' इत्यादि मंत्र के द्वारा उसे जल में डालकर पुनः सब लोग यज्ञ-मंडप

में आ जायें और यजमान सदस्यों की पूजा करके सब ओर देवताओं के उद्देश्य से बलि अर्पण करें। इसके बाद लगातार चार दिनों तक हवन होना चाहिए। चौथे दिन चतुर्थी कर्म करना उचित है। उसमें भी यथा शक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। चतुर्थी कर्म पूर्ण करके यज्ञ-संबंधी जितने पात्र और सामग्री हो, उन्हें ऋत्विजों में बराबर बांट देना चाहिए। फिर मंडप को भी विभाजित करें। सुवर्ण पात्र और शय्या किसी ब्राह्मण को दान कर दें। इसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार हजार, एक सौ आठ, पचास, अथवा बीस ब्राह्मणों को भोजन करायें। पुराणों में तालाब की प्रतिष्ठा के लिए यही विधि बतलाई गई है। कुआं, बावड़ी और पुष्करिणी के लिए भी यही विधि है। 'देवताओं की प्रतिष्ठा में ऐसा ही विधान समझना चाहिए। मन्दिर और बगीचे आदि के प्रतिष्ठा कार्य में भी है। उपरोक्त विधि का यदि पूर्णतया पालन करने की शक्ति न हो तो आधे व्यय से भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्मा जी ने कही है।

जिस पोखरे में केवल वर्षाकाल में जल रहता है, वह सौ अग्निष्टोम यज्ञों के बराबर फल देने वाला होता है। जिसमें शरत्काल तक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकाल तक रहने वाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञ का फल देता है। वसन्त काल तक टिकने वाले जल को अश्वमेघ यज्ञ के समान फलदायक बतलाया गया है तथा जो जल ग्रीष्मकाल तक मौजूद रहता है, वह राजसूय यज्ञ से भी अधिक फल देने वाला होता है।

महाराज ! जो मनुष्य पृथ्वी पर इन विशेष धर्मों का पालन करता है- विधिपूर्वक कुआँ, बावड़ी, पोखरा आदि खुदवाता है तथा मन्दिर, बगीचा आदि बनवाता है, वह शुद्धिचित होकर ब्रह्माजी के लोक में जाता है और वहां अनेकों कल्पों तक दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। दो परार्द्ध 'ब्रह्मा जी की आयु' तक वहां का सुख भोगने के पश्चात् ब्रह्मा जी के साथ ही योगबल से श्री विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है।

भगवान श्री नारायण की महिमा और जल और कमल की उत्पत्ति के वृतान्त में सुनने के लिए भीष्म जी द्वारा आग्रह करने पर पुलस्त्य जी ने मार्कण्डेयजी को भगवान के दर्शन की कथा सुनाई जिसमें जगत् की सृष्टि करने का संकल्प लेकर विहार करते हैं। तदनन्तर विमलमति महात्मा ने लोक रचना का विचार किया। उस विश्वरूप परमात्मा ने विश्व का चिन्तन किया एवं भूतों की उत्पत्ति के विषय में सोचा, उनके तेज से अमृत के समान पवित्र जल का प्रादुर्भाव हुआ। अपने महिमा कभी च्युत न होने वाले सर्वलोक विधाता महेश्वर श्रीहरि ने उस महान् जल में जल क्रीड़ा की। फिर उन्होंने अपनी नाभि से एक कमल उत्पन्न किया जो अनेकों रंगों के कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वह सुवर्णमय कमल सूर्य के समान तेजोमय प्रतीत होता था।

भविष्य पुराण-मध्यम पर्व द्वितीय भाग

प्रतिष्ठा-मुहूर्त एवं जलाशय आदि की प्रतिष्ठा विधि, सूत जी एवं ब्राह्मण संवाद

सूत जी कहते हैं - ब्राह्मणों ! ऋषियों ने देवता आदि की प्रतिष्ठा में माघ, फाल्गुन आदि छः मास नियत किये हैं। जब तक भगवान विष्णु शयन नहीं करते, तब तक प्रतिष्ठा आदि कर्म करने चाहिए। शुक्र, गुरु, बुध तथा सोम- ये चार वार शुभ हैं। जिस लग्न में शुभ ग्रह स्थित हों एवं शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ती हो, उस लग्न में प्रतिष्ठा करनी चाहिए। तिथियों में द्वितीय, तृतीय, पंचमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा तिथियाँ उत्तम हैं। प्राण-प्रतिष्ठा एवं जलाशय आदि कार्य प्रशस्त शुभ मुहूर्त में ही करने चाहिए। देव प्रतिष्ठा और बड़े लोगों में सोलह हाथ का एवं चार द्वारों से युक्त मण्डप का निर्माण करके उसके दिशा-विदिशाओं में शुभ ध्वजाएं फहरानी चाहिए। पाकड़, गूलर, पीपल तथा बरगद के तोरण चारों द्वारों पर पूर्वादि क्रम में बनायें। मण्डप को मालाओं आदि

से अलंकृत करें। दिक्पालों की पताकाएं उनके वर्णों के अनुसार बनवानी चाहिए। मध्य में नीलवर्ण की पताका लगानी चाहिए। ध्वज-दण्ड यदि दस हाथ का हो तो पताका पाँच हाथ की बनवानी चाहिए। मण्डप के द्वारों पर कदली-स्तम्भ रखना चाहिए तथा मण्डप को सुसज्जित करना चाहिए। मण्डप के मध्य में एवं कोणों में वेदियों की रचना करनी चाहिए। योनि और मेखलामण्डित कुण्ड का तथा वेदी पर सर्वतोभद्र चक्र का निर्माण करना चाहिए। कुण्ड के ईशान-भाग में कलश की स्थापना कर उसे माला आदि से अलंकृत करना चाहिए।

यजमान पंचदेव एवं यज्ञेश्वर नारायण को नमस्कार कर प्रतिष्ठा आदि क्रिया का संकल्प करके ब्राह्मणों से इस प्रकार अनुज्ञा प्राप्त करें - 'मैं इस पुण्य देश में शास्त्रोक्त विधि से जलाशय आदि की प्रतिष्ठा करूँगा। आप सभी मुझे इसके लिए आज्ञा प्रदान करें। ऐसा कह कर मातृ-श्राद्ध एवं वृद्धि श्राद्ध सम्पन्न करें। भेरी आदि के मंगलमय वाद्यों के साथ मण्डप में षोडशाक्षर ***'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।'*** आदि मंत्र लिखें, इन्द्रादि दिक्पाल, देवताओं तथा उनके आयुधों आदि का भी यथास्थान चित्रण करें। फिर आचार्य और ब्रह्मा का वरण करें। वरण के अनन्तर आचार्य तथा ब्रह्मा यजमान से प्रसन्न हो उसके सर्वविध कल्याण की कामना करके ***'स्वास्ति'*** ऐसा कहे। अनन्तर सपत्नीक यजमान को सर्वोषधियों से ***'आपो हिष्ठा'*** यजु 11.50 इस मंत्र द्वारा ब्रह्मा, ऋत्विक आदि स्नान करायें। यव, गोधूम, नीवर, तिल, सावाँ, शालि, प्रियंगु और व्रीहि - ये पाठ सर्वोषधि कहें गये हैं। आचार्यादिद्वारा अनुज्ञात सपत्नीक यजमान शुक्ल वस्त्र तथा चन्दन आदि धारण कर पुरोहित को पश्चिम द्वार से यज्ञ मंडप में प्रवेश करें। वहां वेदी की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करें, ब्राह्मण की आज्ञा के अनुसार यजमान निश्चित आसन पर बैठें। ब्राह्मण लोग स्वस्तिवाचन करें। तद्नन्तर यजमान पाँच देवों का पूजन करें। फिर सरसों आदि से विघ्नकर्ता भूतों का अपसर्षण करायें। यजमान अपने बैठने के आसन का पुष्प-चन्दन से अर्चन करें।

अनन्तर भूमि का हाथ से स्पर्श कर इस प्रकार कहें - 'पृथ्वी माता ! तुमने लोकों को धारण किया है और तुम्हें विष्णु ने धारण किया है। तुम मुझे धारण करो और मेरे आसन को पवित्र करो।

'पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय माँ नित्यं पवित्रमासनं करु।। 'यजु'

फिर सूर्य को अर्घ्य देकर गुरु को हाथ जोड़ कर प्रणाम करें। हृदयकमल में इष्ट देवता का ध्यान कर तीन प्राणायाम करें। ईशान दिशा में कलश एक, उस पर विघ्नराज गणेश जी की गन्ध, पुष्प, वस्त्र तथा विविध नैवेद्य आदि से **'गणनां त्वा'** यजु 23.19 मंत्र से पूजन करें। अनन्तर **'आ ब्रह्मन्'** यजु 22.22 इस मंत्र से ब्रह्मा जी की **'तद्विष्णोः'** यजु 6.5 इस मंत्र से भगवान विष्णु की पूजा करें। फिर वेदी के चारों ओर सभी देवताओं को स्व-स्व स्थान पर स्थापित कर उनका पूजन करें। इसके बाद **'राजाधिराजाय प्रसहय'** इस मंत्र से भू शुद्धि कर श्वेत पदमासन पर विराजमान, शुद्धस्फटिक तथा शंख, कुण्द एवं इन्दु के समान उज्ज्वल वर्ण, किरीट-कुण्डलधारी, श्वेत कमल, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र से अलंकृत, श्वेत गन्ध से अनुलिप्त, हाथ में पाश लिए हुए, सिद्ध गन्धर्वों तथा देवताओं से स्तूयमान, नागलोक की शोभा रूप, मकर, ग्राह, कूर्म आदि नाना जलचरों से आवृत, जलाशायी भगवान वरुणदेव का ध्यान करें। ध्यान के अनन्तर पंचागन्यास करें। अर्घस्थापन कर मूलमंत्र का जप करें तथा उस जल से आसन, यज्ञ-सामग्री आदि का प्रोक्षण करें। फिर भगवान् सूर्य को अर्घ्य दें। अनन्तर ईशानकोण में भगवान् गणेश, अग्निकोण में गुरुपादुका तथा अन्य देवताओं का यथाक्रम पूजन करें। मण्डल के मध्य में शक्ति सागर, अनन्त पृथ्वी, आधारशक्ति, कूर्म सुमेरू तथा मंदर और पंचतत्वों का सागोपांग पूजन करें । पूर्व दिशा में कलश के ऊपर श्वेत अक्षत और पुष्प लेकर भगवान् वरुण देव का आह्वान करें। वरुण को आठ मुद्रा दिखायें। गायत्री से स्नान करायें तथा

पाद्य, अर्घ्य, पुष्पांजलि आदि उपचारों से वरुण का पूजन करें। ग्रहों, लोकपालों, दस दिक्पालों तथा पीठ पर ब्रह्मा, शिव, गणेश का पूजन करें। ग्रहों, लोकपालों, दस दिक्पालों तथा पीठ पर ब्रह्मा, शिव, गणेश और पृथ्वी का गन्ध, चन्दन आदि से पूजन करें। पीठ के ईशानादि कोणों में कमला, अम्बिका, विश्वकर्मा, सरस्वती तथा पूर्वादि द्वारों में उनका मरुद्गणों का पूजन करें। पीठ के बाहर पिशाच, राक्षस, भूत, बेताल आदि की पूजा करें। कलश पर सूर्यादि नवग्रहों का आह्वान एवं ध्यान कर पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य तथा बलि आदि द्वारा मंत्रपूर्वक उनकी पूजा करें और उनकी पताकाएं उन्हें निवेदित करें।

विधिपूर्वक सभी देवताओं का पूजन करें। शतरुद्रियका पाठ करना चाहिए। हवन करने के समय वरुण सूक्त, रात्रिसूक्त, सौरसूक्त, ज्येष्ठ मास, वामदेवसाम, स्थन्तरसाम तथा रक्षोघ्न आदि सूक्तों का पाठ करना चाहिए। अपने गृहलोक विधि से कुण्डों में अग्नि प्रदीप्त कर हवन करना चाहिए। जिस देव का यज्ञ होता है अथवा जिस देवता की प्रतिष्ठा हो उसे प्रथम आहुतियाँ देनी चाहिए। तद्नन्तर तिल, आज्य, पायस, पत्र, पुष्प, अक्षत तथा समिधा आदि से अन्य देवताओं के मंत्रों से उन्हें आहुतियाँ देनी चाहिए।

पंचदिवसात्मक प्रतिष्ठायाग में प्रथम दिन देवताओं का आह्वान एवं स्थापन करना चाहिए। दूसरे दिन पूजन और हवन, तीसरे दिन बलि-प्रदान, चौथे दिन चतुर्थीकर्म और पाँचवें दिन नीराजन करना चाहिए। नित्यकर्म करने के अनन्तर ही नैमित्तिक कर्म करने चाहिए। इसी से कर्मफल की प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सर्वप्रथम प्रतिष्ठाय देवता का सर्वोषधिमिश्रित जल से ब्राह्मणों द्वारा वेदमंत्रों के पाठपूर्वक महास्नान तथा मंत्राभिषेक करायें, तदनन्तर चन्दन आदि से उसे अनुलिप्त करें। तत्पश्चात् आचार्य आदि की पूजा कर उन्हें अलंकृत कर गोदान करें। फिर मंगल-घोषपूर्वक तालाब में जल छोड़ने के लिए

संकल्प करें। इसके बाद उस तालाब के जल में नागयुक्त वरुण, मकर, अच्छप आदि की अलंकृत प्रतिमाएं छोड़े। पुनः उसी तालाब के जल, सप्तमृत्किा-मिश्रितजल, तीर्थजल, पंचामृत, कुशोदक तथा पुष्प जल आदि से वरुण देव का स्नान करा कर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि प्रदान करें। सभी देवताओं को बलि प्रदान करें। मंगलघोष के साथ नीराजन कर प्रदक्षिणा करें। एक वेदी पर भगवान् वरुण तथा पुष्करिणी देवी की यथाशक्ति स्वर्ण आदि की प्रतिमा बनाकर भगवान् वरुण देव के साथ देवी पुष्करिणी का विवाह कराकर उन्हें वरुणदेव के लिए निवेदित कर दें। एक काष्ठ का यूप जो यजमान का ऊँचाई के बराबर हो, उसे अलंकृत कर तड़ाग के ईशान दिशा में मंत्रपूर्वक गाड़कर स्थिर कर दें। प्रसाद के ईसान कोण में, प्रपा के दक्षिण भाग में तथा आवास के मध्य में यूप गाड़ना चाहिए। इसके अनन्तर दिक्पालों को बलि प्रदान करें। ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा प्रदा करें।

उस तड़ाग के जल के मध्य में **'जलामातृभ्यो नमः'** ऐसा कह कर जलमातृकाओं का पूजन करें और मातृकाओं से प्रार्थना करें कि मातृका देवियों ! तीनों लोकों के चराचर प्राणियों की संतृप्ति के लिए यह जल मेरे द्वारा छोड़ा गया है, यह जल संसार के लिए आनन्द दायक हो। इस जलाशय की आप लोग रक्षा करें। ऐसी ही मंगल कामना भगवान् वरुण से भी करें। तद्नन्तर वरुण देव को बिम्ब, पदम तथा नागमुद्राएं दिखायें। ब्राह्मणों को उस जलाशय का जल भी दक्षिणा के रूप में प्रदान करें। तद्नन्तर तर्पण कर अग्नि की प्रार्थना करें। स्वयं भी उस जल का पान करें। पितरों को अर्घ्य प्रदान करें। तद्नन्तर पुनः वरुणदेव की प्रार्थना कर जलाशय की प्रदक्षिणा करें। फिर ब्राह्मणों द्वारा वेद-ध्वनियों के उच्चारण पूर्वक यजमान अपने घर में प्रवेश करें और ब्राह्मणों, दीनों, अन्धों, कृपणों तथा कुमारिकाओं को भोजन कराकर संसुष्ट करें एवं भगवान् सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें।

मध्यम पर्व - तृतीय भाग

पुष्करिणी तथा जलाशय के प्रतिष्ठा की विधि - सूत जी एवं ब्राह्मणों का संवाद

बावड़ी आदि की प्रतिष्ठा में प्रथम भूतशुद्धि करके सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें। तदन्तर गणेश, गुरुपादुका, जय और भद्रका समहित होकर पूजन करें। मण्डल के मध्य में आधार-शक्ति, अनन्त तथा कूर्म की पूजा करें। चन्द्र, सूर्य आदि का भी मण्डल में पूजन करें। दूसरे पात्र में पुष्पादि उपचारों से भगवान् वरुण का पूजन करें। कमल के पूर्वादि पत्रों में इन्द्रादि दिक्पालों की, उनके आयुधों की तथा मध्य में ब्रह्मा की पूजा करें। '**भू भुर्व स्वः**' इन तत्वों की भी पूजा करें। मण्डल के उत्तर भाग में नागरूप अनन्त की पूजा करें। इसके बाद हवन करें। प्रथम आहुति वरुण देव को दें, फिर दिक्पालों, नारायण, शिव, दुर्गा, गणेश, ग्रहों और ब्रह्मा को प्रदान करें। स्विष्टकृत् हवन करके बलि प्रदान करें। एक अष्टदल कमल के ऊपर वरुण की रजत-प्रतिमा स्थापित करें और पुष्करिणी बावड़ी की प्रतिमा स्वर्ण की बनायें तथा उसका पूजन कर जलाशय में छोड़े दें। जलाशय के मध्य में नौका आरोपित करें। जलाशय के बीच में ऋत्विक होम करें। शेषनाग का मूर्ति भी जलाशय में छोड़ दें। सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न कर ब्राह्मणों को दक्षिणा दें। जलाशय में मकर, ग्राह, मीन, कूर्म एवं अन्य जलचर प्राणी तथा कमल, शैवाल आदि भी छोड़ें। अनन्तर जलाशय की प्रदक्षिणा करें। लावा और सीपी भी छोड़ें। दूध की धार भी दें। पुष्करिणी में चारों ओर से रक्तसूत्र से आवेष्टित करें। तीनों को संतुष्ट कर घर में प्रवेश करें।

ब्राह्मणों ! अब मैं नलिनी जिस तालाब में कमल खिलें हों, वापी तथा हद गहरे जलाशय की प्रतिष्ठा की सामान्य विधि बतला रहा हूँ। इन सब की प्रतिष्ठा करने के पहले दिन भगवान वरुणदेव की सुपर्ण-प्रतिमा बनाकर '**आपो हिष्ठा**' यु.11.50 इस मंत्र से उसका जलाधिवास करें, अनन्तर एक सौ कमल-

पुष्पों से प्रतिमा का पुष्पाधिवास करें तत्पश्चात् मंडल में आकर पूर्व मुख बैठे और कलश पर गणेश, वरुण, शंकर, ब्रह्मा, विष्णु एवं सूर्य की पूजा करें। वरुण के लिए घी और पायम की आहुति दें। अन्य देवताओं को स्रुवाद्वारा एक-एक आहुति प्रदान कर पायस-बलि दें। फिर नलिनी-वापी आदि का संकल्प पूर्वक उत्सर्जन कर दें। मध्य में यूप की स्थापना करें। तदनन्तर गोदान दे और दक्षिणा प्रदान करें। पूर्णाहुति के अनन्तर भगवान सूर्य को अर्घ्य प्रदान करें और अपने घर में प्रवेश करें।

महायूप और पौंसले आदि की प्रतिष्ठा-विधि

ब्राह्मणों ! अब मैं चार हाथ से लेकर सोलह हाथ के प्रमाण में निर्मित महायूप की एक पौंसला तथा कुएं आदि की प्रतिष्ठा विधि बतला रहा हूँ। इनकी प्रतिष्ठा में गर्ग-त्रिरात्र यज्ञ करना चाहिए। पौंसले के पश्चिम भाग में श्वेत कुम्भ पर भगवान् वरुण को स्थापित कर 'गायत्र' मंत्र तथा 'आपो हिष्ठां' इन मंत्रों से उन्हें स्नान कराना चाहिए। उसके बाद गन्ध, तेल, पुष्प और धूप आदि से मंत्रपूर्वक उनकी अर्चना कर उन्हें वस्त्र, नैवेद्य, दीप तथा चन्दन आदि निवेदित करना चाहिए। प्रतिष्ठा के अन्त में श्राद्ध कर एक ब्राह्मण-दंपति को भोजन कराना चाहिए। आठ हाथ का मण्डप बनाकर उसमें कलश की स्थापना करें। उस पर नारायण के साथ वरुण, शिव, पृथ्वी आदि का ततद् मन्त्रों से पूजन करें, उसके बाद स्थलीपाक-विधान से हवन के लिए कुशकण्डिका करें। भगवान् वरुण का पूजन कर स्रुवा द्वारा उन्हें 'वरुणस्य' यजु 4.36 इत्यादि मंत्रों से दस आहुतियाँ प्रदान करें। अन्य देवताओं के लिए क्रमशः एक-एक आहुति दें। उसके बाद स्विष्टकृत हवन करें और अग्नि की सप्तव्हिाओं के नाम से चरुका हवन करें। तदनन्तर सभी को नैवेद्य और बलि प्रदान करें। इसके बाद संकल्प वाक्य पढ़कर कूप का उत्सर्जन कर दें। ब्राह्मणों को पयस्विनी गाय एवं दक्षिणा प्रदान करें। यदि छोटे कूप की प्रतिष्ठा करनी हो तो विधिवत् पूजा करना चाहिए।

लाल सूत्र से कलश को वेष्टित करना चाहिए। यूप स्थापित करने के पश्चात् संकल्पपूर्वक कूप का उत्सर्जन करना चाहिए। ब्राह्मणों को विधिवत् सम्मानपूर्वक दक्षिणा देनी चाहिए।

मत्स्यपुराण- अध्याय अट्ठावन- तालाब, कुआं, बावड़ी, पुष्करिणी आदि प्रतिष्ठा विधि का विधान

सूतजी कहते हैं - ऋषियों ! सूर्य पुत्र मनु ने जलाशय के भीतर अवस्थित मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णु से पूछा - 'देवेश ! अब मैं आपसे तालाब, कुआं, बावड़ी, पुष्करणी की प्रतिष्ठा आदि विधि पूछ रहा हूँ। नाथ ! इन कार्यों में ऋत्विज् कैसे होने चाहिये ? वेदी किस प्रकार बनती है ? दक्षिणा का प्रमाण कितना होता है ? समय कौन सा उत्तम होता है ? स्थान कौन सा होना चाहिए ? आचार्य किन-किन गुणों से युक्त हों तथा कौन से पदार्थ प्रशस्त माने गये हैं - यह सब हमें यथार्थ रूप से बतलाइये।

मत्स्य भगवान् ने कहा - महाबाहु राजन ! सुनो, तालाब आदि की प्रतिष्ठा का जो विधान है, उसका वेदवक्ताओं ने पुराणों में इस रूप में वर्णन किया है। उत्तरायण आने पर शुभ शुक्लपक्ष में ब्राह्मणों का वरण करें और तालाब के समीप, जहां की भूमि पूर्वोत्तर दिशा की ओर ढालू हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर सुन्दर वेदी बनायें। वेदी सब ओर सुन्दर हो और उसका मुख चारों दिशाओं में हो। वेदी के सब और निर्माण करायें। नृप-नन्दन ! कुण्डों की संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिये, इससे कम-बेशी नहीं। कुण्डों की लम्बाई-चौड़ाई एक-एक अरन्ति की हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओं से सुशोभित हों, उनमें यथा स्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिए। योनि की लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अंगुल की हो तथा कुण्ड की गहराई एक हो । मेखलाएँ तीन वर्ष ऊँची होनी चाहिए। ये चारों ओर से एक रंग की बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएं लगायी जायें। मण्डप के चारों ओर

क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगद की शाखाओं के दरवाजे बनाये जायें। जहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करने वाले ब्राह्मणों का वरण किया जाये। वे सभी ब्राह्मण वेदों के पारगामी विद्वान् होने चाहिए। सब प्रकार के शुभ लक्षणों से सम्पन्न, मन्त्रों के ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण को ही इस कार्य में पुरोहित पद पर नियुक्त करना चाहिए। प्रत्येक कुण्ड के पास कलश, यज्ञ-सामग्री, पंखा, दो चंवर और दो दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें। तदन्तर प्रत्येक देवता के लिए नाना प्रकार की चरू 'पुरोडास, खीर, दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ उपस्थित करें। विद्वान आचार्य मंत्र पढ़कर उन सामग्रियों को पृथ्वी पर सब देवताओं को समर्पित करें। तीन रत्ती के बराबर एक यूप स्थापित किया जाये, जो किसी दूधवाले वृद्ध वृक्ष 'वट, पाकड़ आदि'-शाका का बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहने वाले पुरुष को यजमान के शरीर के बराबर एक यूप 'यज्ञ स्तम्भ' स्थापित करना चाहिए। उसके बाद पच्चीस ऋत्विजों का वर्णन करके उन्हें सोने के आभूषणों से विभूषित करें। सोने के बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अंगुठी, पवित्र एवं नाना प्रकार के वस्त्र- ये सभी आभूषणादि प्रत्येक ऋत्विज् को बराबर-बराबर दें और आचार्य को दूना अर्पण करें। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपने को प्रिय लगने वाली अन्यान्य वस्तुएं भी प्रदान करें। सोने का बना हुआ कछुआ और मगर, चांदी के मत्स्य और दुण्डूभ 'गिरगिट' तांबे के केकड़ा और मेढ़क तथा लोहे के दो सूंस बनवायें और सब को सोने के पात्रों में रखें। राजन् ! इन सभी वस्तुओं को पहले से ही बनवाकर ठीक रखना चाहिए। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानों की बताई हुई विधि के अनुसार सर्वेषधिमिश्रित जल से स्नान करने श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करें। फिर श्वेत चंदन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रों के साथ पश्चिम द्वार से यज्ञमण्डल में प्रवेश करें। उस समय मांगलिक शब्द होने चाहिए और भेरी आदि बाजे बजने चाहिए। तदनन्तर विद्वान पुरुष पांच रंग के चूर्णों से मण्डल बनाये और उसमें सोलह अरों से युक्त चक्र चिह्नित करें। उसके गर्भ में कमल

का आकार बनाएँ। चक्र देखने में सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओर से गोल होने के साथ ही मध्य भाग में अधिक शोभायमान दीख पड़ता हो। बुद्धिमान पुरुष उस चक्र को वेदी के ऊपर स्थापित कर उसके चारों ओर प्रत्येक दिशा में मंत्र पाठ पूर्वक ग्रहों और लोकपालों की स्थापना करें। फिर मध्य भाग में वरुण संबंधी मंत्र का उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करें और उसी के ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वती की भी स्थापना करें। इसके बाद सम्पूर्ण लोकों की शान्ति के लिए भूत, समुदाय को स्थापित करें। इस प्रकार नैवेद्य और फलों के द्वारा सबकी स्थापना करके उन सभी जल पूर्ण कलशों को वस्त्रों से आवेष्टित कर दें। फिर पुष्प और चन्दन के द्वारा उन्हें अलंकृत कर द्वार रक्षा के लिए नियुक्त ब्राह्मणों से स्वयं आचार्य वेदपाठ करने के लिए प्रेम से कहें। पूर्व दिशा की ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिण द्वारा पर दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वार पर दो सामवेदी तथा उत्तरद्वार पर दो अथर्ववेदी विद्वानों को रखना चाहिए। यजमान मण्डल के दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख होकर बैठे और ऋत्विजों से पुनः आचार्य कहें - आप यज्ञ प्रारम्भ करें। तत्पश्चात् वे जप करने वाले ब्राह्मणों से कहें - 'आप लोग उत्तम मंत्र का जप करते रहें।' इस प्रकार सब को प्रकरित करके मंत्रज्ञ पुरुष अग्नि का पर्युक्षण 'चारों ओर जल छिड़क' कर वरुण संबंधी मन्त्रों का उच्चारण कर घी और समिधाओं की आहुति दें। ऋत्विजों को भी वरुण सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा सब ओर से हवन करना चाहिए। ग्रहों के निमित विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञ कर्म में इन्द्र, शिव, मरुदण, लोकपाल और विश्वकर्मा के निमित भी विधिपूर्वक होम करें।

पूर्व द्वार पर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्ति सूक्त, रुद्रसूक्त, पवमा सूक्त तथा पुरुष सूक्त का पृथक् जप करें। दक्षिण द्वार पर स्थित यजुर्वेदी विद्वान इन्द्र, रुद्र, सोम, कूष्माण्ड, अग्नि तथा सूर्य संबंधी सूक्तों का जप करें।

राजन् ! पश्चिम द्वार पर रहने वाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजमास, पुरुषसूक्त सुपर्णसूक्त रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पंचनिधनसूक्त, गायत्र समास, ज्येष्ठसाम,

वामदेव्यसाम, बृहत्साम, रौरवसाम, रथन्तरसाम, गोव्रत, काण्व, सूक्त साम रक्षोध्न और यम संबंधी सूक्तों का गान करें। उत्तर द्वार के अथर्ववेदी विद्वान मन ही मन भगवान् वरुणदेव की शरण ले। शान्ति और पुष्टि संबंधी मन्त्रों का जप करें। इस प्रकार पहले दिन मंत्रों का जप करें। इस प्रकार पहले दिन देवताओं की स्थापना करके हाथी और घोड़े के पैरों के नीचे की, जिस पर रथ चलता हो-ऐसी सड़क की, बॉबी की, दो नदियों के संगम की, गोशाला की, साक्षात् गौओं के पैर के नीचे की तथा चौराहे की मिट्टी 'सप्तमृत्तिका' लेकर कलशों में छोड़ दें। उसके बाद सर्वोषधि, गोरोचन, सरसों के दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़े। फिर पंचगव्य' दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र मिलाकर उन कलशों के जल से यजमान का विधिपूर्वक अभिषेक करें। इस प्रकार प्रत्येक कार्य महामन्त्रों के उच्चारणपूर्वक विधिसहित करना चाहिए।

श्रेष्ठ मुनियो ! इस प्रकार शास्त्रविहित कर्म द्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभात का उदय होने पर व्रती हवन के अन्त में ब्राह्मणों को सौ, अड़सठ, पचास, छत्तीस अथवा पच्चीस गौ दान करें। राजन् ! तदन्तर ज्योतिषी द्वारा बतलाये गये शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आने पर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकार के बाजों की मनोहर ध्वनि के साथ एक गौ को सुवर्ण से अलंकृत करके तालाब के जल में उतारे और उसे समागान करने वाले ब्राह्मण को दान कर दें। तत्पश्चात् पंचरत्नों से युक्त सोने का पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदि को रखें और किसी बड़ी नदी से मंगाये हुए जल से भर दें। फिर उस पात्र को दही-अक्षत् से विभूषित कर वेद और वेदांतों के विद्वान् चार ब्राह्मण हाथ से पकड़ें और अथर्ववेद के मंत्रों से उसे स्नान करायें, फिर यजमान की प्रेरणा से उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाब के जल में डाल दें। इस प्रकार 'पुनर्मामेति' तथा 'आपोः हिष्ठा मयो' इत्यादि मंत्रों के द्वारा उसे जल में डालकर पुनः सब लोग यज्ञमण्डप में आ जायें और यजमान सदस्यों की पूजा कर सब ओर देवताओं के उद्देश्य से बलि अर्पण करें। इसके बाद लगातार चार दिनों तक हवन होना

चाहिए। राजन ! चौथे दिन चतुर्थी-कर्म करना उचित है। उसमें भी यथा शक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। तदन्तर वरुण से क्षमा प्रार्थना करके यज्ञ संबंधी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें ऋषियों में बराबर बांट देना चाहिए। फिर मण्डपों को विभाजित करें। सुवर्णपात्र और शय्या व्रतारम्भ कराने वाले ब्राह्मण को दान कर दें। इसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार एक हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणों को भोजन करायें। पुराणों में तालाब की प्रतिष्ठा के लिए यही विधि बतलायी गई है। सभी कुआं, बावली और पुष्करिणी के लिए यही विधि है।

अग्नि पुराण के चौंसठवें अध्याय में कुआं, बावड़ी और पोखरे आदि की प्रतिष्ठा की विधि

श्री भगवान हयग्रीव कहते हैं- ब्राह्मण ! अब मैं कूप, वापी और तड़ाग की प्रतिष्ठा की विधि का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो। भगवान् हरि ही जल रूप से देव श्रेष्ठ सोम और वरुण हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व अग्निपोममय है। जल रूप नारायण उनके कारण हैं। मनुष्य वरुण स्वर्ण, रौप्य या रत्नमया पंतिमा का निर्माण करावे। वरुण देव द्विभुज हंसारूढ़ और नदी एवं नालों से युक्त हैं। उनके दक्षिण हस्त में अभय मुद्रा और वाम हस्त में नाशपाश सुशोभित होता है। यज्ञ मण्डप के मध्य भाग में कुण्ड से सुशोभित वेदिका होनी चाहिए तथा उसके तोरण पूर्व-द्वार पर कमण्डलुसहित वरुण-कलश की स्थापना होनी चाहिए। इसी तरह भद्रक दक्षिणी-द्वार, अर्द्धचन्द्र, पश्चिम-द्वार तथा स्वास्तिक उत्तर-द्वार पर भी वरुण कलशों की स्थापना आवश्यक है। कुण्ड में अग्नि का आह्वान करके पूर्णाहुति प्रदान करें।

'ये ते शतं वरुण' आदि मंत्रों से स्नान पीठ कर वरुण की स्थापना करें। तत्पश्चात् आचार्य मूल-मंत्र का उच्चरण करके, वरुण देवता की प्रतिमा को वहीं पधराकर, उसमें घृत का अभ्यग करें। फिर **'शं नो देवी'** अर्थव 1.6.1, शु.

यजु. 36.12 इत्यादि मन्त्र से उसका प्रक्षालन करके **'शुद्धबालः सर्वशुद्धवालों'** शु यजु. 24.3 आदि से पवित्र जल द्वारा उसे स्नान करावें। तदन्तर स्नानपीठ की पूर्वादि दिशाओं में आठ कलशों का अधिवासन स्थापना करें। इनमें से पूर्ववर्ती कलशों में समुद्र के जल, आग्नेय कोणकतर्ती कुम्भ में गंगाजल, दक्षिण के कलश में वर्षा के जल, नैर्ऋत्यकोण वाले कुम्भ में झरने का जल, पश्चिम में नद के जल, उत्तर-कुम्भ में औभ्दिज्ज सोते - के जल एवं ईशावर्ती कलश में तीर्थ के जल को भरें, उपर्युक्त जल न मिलने पर सब कलशों में नदी के ही जल को डालें। उक्त सभी कलशों को **'यासां राजा'** अथर्व.1 33.2 आदि मंत्रों से अभिमन्त्रित करें। विद्वान पुरोहित वरुण देव का 'सुमित्रया.' शु.यजु. 35.12 आदि मंत्र से मार्जन और निर्मंधन करके, 'चित्रं देवाना.' शु.यजु.13.46 तथा **तच्चक्षुर्देवहितं'** शु यजु. 36.24 - इन मंत्रों से मधुरत्रय शहद, घी और चीनी द्वारा वरुण देव के नेत्रों का उन्मीलन करें। फिर वरुण की उस सुवर्णमयी प्रतिमा में ज्योति का पूजन करें एवं आचार्य को गोदान दें। तदन्तर **'समुद्रज्येष्ठाः'** क. 7.49.1 आदि मंत्र के द्वारा वरुण देवता का पूर्व कलश के जल से अभिषेक करें। **'समुद्रंगच्छ.'** यजु. 6.21 इत्यादि मंत्र के द्वारा अग्निकोणर्ती कलश के गंगा जल से, 'सोमों धेनुं.' शु.यजु. 34.21 इत्यादि मंत्र के द्वारा दक्षिणी कलश के वर्षा जल से, **'देवीरापो.'** शु.यजु. 6.27 इत्यादि मंत्र के द्वारा नैर्ऋत्यकाणवर्ती कलश के निर्झर- जल से, **पंचनद्यः** शु. यजु. 34.11 आदि मंत्र के द्वारा पश्चिम-कलश के नदी जल से, **'उभ्दिद्भ्यः'** इत्यादि मंत्र के द्वारा उत्तरवर्ती कलश के उभ्दिज्ज जाल से और पावमानी ऋचाके द्वारा ईशानकोण वाले कलश के तीर्थ-जल से वरुण का अभिषेक करें। फिर यजमान मौन रहकर **'आपो हि ष्हा.'** शु. यजु. 11.50 मंत्र के द्वारा पंचगव्य से **'हिरण्यर्णा.'** श्री मुक्त के द्वारा स्वर्ण जलसे आपो अस्मान शु.यजु. 4.2 मंत्र के द्वारा वर्षा जल से, व्याहृतियों का उच्चारण करके कूप जल से तथा **'आपो देवीः.'** शु. यजु. 12.35 मंत्र के द्वारा तड़ाग-जल एवं तोरणवर्ती वरुण-कलश

के जल से वरुण देव को स्नान करावें। **'वरुणस्योतम्भनमसि.'** शु.यजु. 4.36 मंत्र के द्वारा पर्वतीय जल अर्थात् झरने का पानी से भरे हुए इक्यासी कलशों द्वारा उसको स्नान करावें। **'त्वं नो अग्ने वरुणस्य.'** शु. यजु 21.3 इत्यादि मंत्र से अर्घ्य प्रदान करें। व्याहृतियों का उच्चारण करके मधुपर्क, **'बृहस्पते अति यदर्यो.'** शु. यजु. 26.3 मंत्र से वस्त्र, **'इमं में वरुणः.'** शु.यजु. 21.1 इस मंत्र से पवित्रक और प्रणव से उत्तरीय समर्पित करें।

वारुणसूक्त से वरुणदेवता को पुष्प, चंवर, दर्पण, छत्र और पताका निवेदन करें। 'वरुणं वा.' इस मंत्र का संधिकरण करके वणसूक्त से उनका पूजन करें। फिर मूल-मंत्र से सजीवीकरण करके चन्दन आदि द्वारा पूजन करें। मण्डल में पूर्ववत् अर्जना कर लें। अग्निकुण्ड में समिधाओं का हवन करें। वैदिक मंत्रों से गंगा आदि चारों गौओं का दोहन करें।

तदनन्तर सम्पूर्ण दिशाओं में यवनिर्मित चरु की स्थापना करके होम करें। चरु को व्याहति, गायत्री या मूल-मंत्र से अभिमन्त्रित करके, सूर्य, प्रजापति, दिव अन्तक-नग्रह, पृथ्वी, देहधृति, स्वधृति, रती, उग्र, भीम, रौद्र, विष्णु, वरुण, घाता, रायस्पोष, महेन्द्र, अग्नि, यम, ऋषि, वरुण, वायु, कुबेर, ईश, अनन्त, ब्रह्मा, राजा जलेश्वर वरुण- इन नामों का चतुर्थ्यन्तरूप बोकर, अन्त में स्वाहा लगाकर बलि समर्पित करें।

'इदं विष्णुः.' शु.यजु. 5.15 और **'तद् विप्रासो.'** शु. यजु. 34.44- इन मंत्रों से आहुति दें। **'सोमो धेनुम्.'** शु. यजु. 34.21 मंत्र से छः आहुतियाँ देकर **'इमं में वरुणः'** शु. यजु. 21.1 मंत्र से एक आहुति दें। **'आपो हिष्ठा.'**

शुक्ल यजु. 11.50-52 आदि तीन ऋचाओं से तथा **'इमा रुद्ध'**. इत्यादि मंत्र से भी आहुतियाँ दें।

फिर दसों दिशाओं में बलि समर्पित करें और गन्ध-पुष्प आदि से पूजन करें। तत्पश्चात् विद्वान पुरुष प्रतिमा को उठाकर मण्डल में स्थापित करें तथा गन्ध-पुष्प आदि एवं स्वर्ण-पुष्प आदि के द्वारा क्रमशः उसका पूजन करें। तदन्तर श्रेष्ठ आचार्य आठों दिशाओं में दो बित्ते प्रमाण के जलाशय और आठ बालुकामयी सुरम्य वेदियों का निर्माण करें। 'वरुणस्य.' यजु 4.36 इस मंत्र से घृत एवं यवनिर्मित चरु की पृथक्-पृथक् एक सौ आठ आहुति देकर शान्ति जल ले आवें और उस जल से वरुण देव के सिर पर अभिषेक करके सजीवीकरण करें। वरुण देव अपनी धर्मपत्नी गौरी देवी के साथ विराजमान नदी-नदों से घिरे हुए हैं - इस प्रकार उनका ध्यान करके।

'ऊँ वरुणाय नमः।' मंत्र से पूजन करके सानिध्यकरण करें। तत्पश्चात् वरुण देव को उठाकर गजराज के पृष्ठदेश आदि सवारियों पर मंगल-द्रव्यों सहित स्थापित करके नगर में भ्रमण करावें। इसके बाद वरुण मूर्ति को **'आपो हिष्ठा'**. आदि मंत्र का उच्चारण करके त्रिमधुयुक्त कलश जल में रखें और कलश सहित वरुण को जलाशय के मध्य भाग में सुरक्षित रूप से स्थापित कर दें।

इसके बाद यजमान स्नान करके वरुण का ध्यान करें, फिर ब्रह्माण्ड संज्ञिका सृष्टि को अग्नि बीज रं - से दग्ध करके उसकी भस्म राशि को जल से प्लावित करने की भावना करें। 'समस्त लोक जलमय हो गया है'- ऐसी भावना करके उस जल में जलेश्वर वरुण का ध्यान करें। इस प्रकार जल के मध्य भाग में वरुण देवता का चिन्तन करके वहां युग की स्थापना करें। यूप चतुष्कोण, अष्टकोण या गोलाकार हो तो उत्तम माना गया है। उसकी लम्बाई दस हाथ की होनी चाहिए। उसमें उपसायदेवता का परिचायक चिह्न हो। उसका निर्माण किसी यज्ञ-संबंधी वृक्ष के काष्ठ से हुआ हो। ऐसा ही यूप कूप के लिए उपयोगी होता है। उसके मूल भाग में हेममय फल का न्यास करें। वापी में पन्द्रह हाथ का पुष्करिणी में बीस हाथ का और पोखरे में पच्चीस हाथ का युग काष्ठ जल के

भीतर निवेशत करें। यज्ञ मंडप के प्रांगण में **'यूप ब्रह्म.'** आदि मंत्र से यूप की स्थापना करके उसको वस्त्रों से आवेष्टित करें तथा यूप के ऊपर पताका लगावें। उसका गन्ध आदि से पूजन करके जगत् के लिए शान्तिकर्म करें। आचार्य को भूमि, गौ, सुवर्ण तथा जलपात्र आदि दक्षिणा में दें। अन्य ब्राह्मणों को भी दक्षिणा दें और समागत जनों को भोजन करायें।

आब्रहमस्तम्बपर्यनतं ये केचित्सलिलार्थिनः।
ते तृप्तिमुपगच्छन्तु तडागस्थेन वाणि।।

'ब्रह्मा से लेकर तृण-पर्यन्त जो भी जलपिपासु हैं, वे इस तड़ाग में स्थित जल के द्वारा तृप्ति को प्राप्त हों।' ऐसा कहकर जल का उत्सर्ग करें और जलाशय में पंचगव्य डालें।

तदन्तर **'आपो हिष्ठा.'** इत्यादि तीन ऋचाओं से ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित शान्ति जल तथा पवित्र तीर्थ - जल निक्षेप करें एवं ब्राह्मणों को गोवंश का दान करें। सर्वसाधारण के लिए बेरोक-टोक अन्न-वितरण का अनुष्ठान करता है तथा जो एक बार भी जलाशय की प्रतिष्ठा करता है, उसका पुण्य उन यज्ञों की अपेक्षा हजारों गुणा अधिक है। वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होकर विमान में प्रमुदित होता है और नरक को कभी नहीं प्राप्त होता है।

जलाशय से गौ आदि पशु जल पीते हैं, इससे कर्ता पापमुक्त हो जाता है, मनुष्य जलदान से सम्पूर्ण दानों का फल प्राप्त करके स्वर्ग लोक को जाता है।

दो सौ ग्यारहवां अध्याय- में नाना प्रकार के दानों में जल दान का भी वर्णन है- अग्निदेव ने कहा है कि - जल या प्याऊ का दान देकर मनुष्य भोग और मोक्ष दोनों को सिद्ध कर लेता है।

दो सौ पचपनवां अध्याय - साक्षी, लेखा तथा दिव्य प्रमाणों के विषय में विवेचन, अग्नि देव ने जल- दिव्य के विषय में बताया कि जल का दिव्य ग्रहण

करने वाले को निम्नांकित रूप वरुण देव की प्रार्थना करना चाहिए - वरुण ! आप पवित्रों में पवित्र हैं और सब को पवित्र करने वाले हैं। मैं शुद्धि के योग्य हूँ। मेरी शुद्धि कीजिये। सत्य के बल से मेरी रक्षा कीजिये।' - इस मंत्र से जल को अभिमन्त्रित करके मनुष्य नाभि पर्यन्त जल में खड़े हुए पुरुष की जंघा पकड़ कर जल में डूबे। उसी समय कोई व्यक्ति बाण चलावे। जब तक एक वेगवान् मनुष्य उस छूटे हुए बाण को ले आवे तब तक यदि शपथकर्ता जल में रहे तो वह शुद्ध होता है।

श्रीहरि कल्याण साधनांक - जल और स्वर साधन

स्वर तथा उसका उदय:- यह शायद बहुत थोड़ों को पता होगा कि हमारे शरीर में रात-दिन अव्यापत गति से चलने वाला श्वास-प्रश्वास एक ही साथ एक ही समय नासिका के दोनों नसकों से नहीं चला सकता। वह क्रमशः निश्चत समयानुसार अलग-अलग दोनों नसकोरों से चला करता है। एक नसकोरे का निश्चित समय पूरा हो जाने पर वह दूसरे में जाता है। श्वास प्रश्वास की इस गति का नाम **स्वर** है तथा उस गति का एक नसकोरे से दूसरे में जाना उसका **उदय** कहलाता है।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने स्वरोदय की इस प्रक्रिया का निश्चित रूप से पता लगाकर उससे किस तरह लाभ उठाये जा सकते हैं, तथा उससे लाभ उठाने के लिए कौन-कौन से कार्य कब और कैसे करने चाहिए ? इन सब विषयों का निश्चय किया था। तद्नुसार हम इस लेख में खास तौर पर स्वरों के चलने के नियम, उन्हें जानने की विधि, उनके चलने की अवधि, उनके बदलने की रीति, उनसे संबंधित पंचतत्व, कौन-कौन से कार्य कब करने चाहिए, पुरुष और स्त्री के स्वरों में कोई भेद है या नहीं तथा सुख-दुख, रोग, आपत्तियाँ, कष्ट आदि की जानकारी स्वरोदय का गहराई से अध्ययन की आवश्यकता है।

पंचतत्व - स्वरोदय के ज्ञान के साथ-साथ पंचतत्व का ज्ञान होना अनिवार्य है। पंचतत्व के ज्ञान के बिना स्वरोदय की बहुत सी प्रक्रियाएं पूर्णरूप से न तो सिद्ध ही हो सकती हैं और न उनका पता ही चल सकता है। स्वरोदय के साथ ही ही साथ पंचतत्वों का भी उदय हुआ करता है, यह बात खास ध्यान देने योग्य है और इसलिए पंचतत्वों का स्वरोदय के साथ किस तरह से उदय होता है और उन्हें जाना जाता है, इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये यहां कुछ प्रक्रियाएं दी जाती हैं।

पंचतत्वों का परिचय तथा ध्यान करने की विधियां :- योगियों के ध्यानादि विशेष कार्य साधना के लिए हमारे शरीर में अनेक चक्रों की कल्पना की है। यहां पृथ्वी और जल तत्व को ही लिया है।

पृथ्वी तत्व : शरीर में इस तत्व का निवास 'मूलाधारचक्र' में है और यह चक्र शरीर में योनि गुदा के पास सीवनी में सुषुम्णा के मुख से लग्न है। सुषुम्णा यहीं प्रारम्भ होती है। प्रत्येक चक्र का आकार कमल के फूल का सा होता है। यह चक्र 'भूः' लोक का प्रतिनिधि है। पृथ्वी तत्व का रंग पीला और आकृति चतुष्कोण होती है। इस का गुण गंध है और ज्ञानेन्द्रिय नासिका तथा कर्मेन्द्रिय गुदा है। शरीर में पाण्डू, कमला आदि रोग इसी तत्व के विकास से पैदा होते हैं। भय आदि मानसिक विकारों में इसी तत्व की प्रधानता होती हैं। पृथ्वी तत्व जन्य विकार मूलाधार चक्र में स्थान स्थिर करने से स्वयमेव शान्त हो जाते हैं।

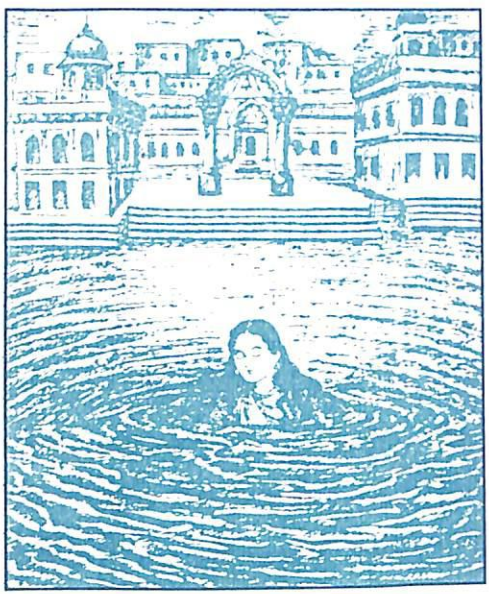

ध्यान विधि : एक प्रहर रात रह जाने पर शान्त स्थल में पवित्र आसन पर दोनों पैरों को पीछे की ओर मोड़ कर उन पर बैठ जायें। दोनों हाथ उलटे करके घुटनों पर ऐसे रखें कि अंगुलियों की नोंक पेट की ओर रहें। तब नासाग्रदृष्टि रखते हुए मूलाधार चक्र में **-लं-बीजां धरणीं ध्यायेच्चतुरस्त्रा सुपीतभाम्। सुगन्धस्वर्णत्वमारोग्यं देहलाघवम्।**

भावार्थ - 'लं' बीजवाली,चौकोण, पीली पृथ्वी का ध्यान करें। इस प्रकार करने से नासिका सुगन्ध से भर जायेगी और शरीर स्वर्ण के समान कान्तिवाला हो जायेगा। ध्यान करते हुए पृथ्वी के उपयुक्त तमाम गुणों को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करना चाहिए और 'लं' बीज का जाप करते रहना चाहिए।

जल तत्व : यह तत्व शरीरस्थ स्वाष्ठिनचक्र में है। यह चक्र पेडू अर्थात् लिंग 'जननेन्द्रिय' के मूल में स्थित है। यह चक्र शरीर में 'भवः' लोक का प्रतिनिधि है और उसमें जलतत्व का निवास है। जलतत्व का रंग श्वेत और आकृति अर्धचन्द्राकार होती है। इसका गु अम्ल, कषाय आदि तमाम रसास्वाद इसी तत्व की वजह से होते हैं। इसकी ज्ञानेन्द्रिय जीभ और कर्मेन्द्रिय लिंग है। मोहादि विकार इसी तत्व के परिणाम हैं।

ध्यान-विधि- पृथ्वी तत्व की ध्यान विधि में प्रदर्शित आसन में बैठकर-

वं-बीजं वारुणं ध्यायेदर्धचन्द्रं शशिप्रभम्।
क्षुत्पिपासासहिष्णुत्वं जलमध्येषु मज्जनम्।।

भावार्थ - 'वं' बीजवाले, अर्धचन्द्राकार चन्द्रमा की तरह कान्ति वाले जलतत्व उक्त चक्र में ध्यान करें। इससे भूख-प्यास मिटकर सहन शक्ति पैदा होगी और जल में अव्याहत गति हो जायेगी।

पृथ्वी व जल तत्व की कुछ विशेष जानकारी :

		जल तत्व	पृथ्वी तत्व
1.	स्थान -	स्वाधिष्ठानचक्र	मूलाधारचक्र
2.	आकृति -	अर्धचन्द्राकार	चतुष्कोण
3.	गुण -	रस	गन्ध
4.	रंग -	श्वेत	पीला
5.	स्वाद -	कसैला	मधुर
6.	बीज -	वं	'लं'
7.	श्वास की गति-नसकोरे के निचले भाग में 1, नसकोरे के मध्य भाग में		
8.	श्वास प्रमाण 'लम्बाई' -	16 अंगुल	12 अंगुल
9.	समय -	पल 40, मिनट 12	पल-50, मिनट 20

स्वर तथा कार्य : हम जो आवश्यक कार्य करते हैं, उनमें प्रायः आज-कल चाहिए, उतनी सफलता प्राप्त नहीं होती। यदि वे कार्य अमुक निश्चित स्वर की उपस्थिति में किये जायें तो पूर्णतया उनमें सफलता हासिल होती है। स्वरोदयशास्त्र सर्वसाधारण के लिए बहुत ही उपयोगी है।

साधारण नियम यह है कि - प्रायः तमाम स्थिर व अच्छे कार्य पृथ्वी और जलतत्व की उपस्थिति में ही करने चाहिए। जलाशय निर्माण व स्नान के निम्नवत् हैं :

कार्य का नाम	स्वर का नाम	तत्व का नाम	बार
1. जलाशय निर्माण	**वाम स्वर**	**पृथ्वी, जल या दोनों**	**सोम, बुध, गुरु, शुक्र**

जलाशय, तडाग, बावली, वापी, कुआं बनवाने का माहात्म्य एवं विभिन्न विधियाँ

सृष्टि खण्ड-पद्म पुराण

पोखरे, बावड़ी, कुएं बनवाने एवं प्याऊ चलाने का माहात्म्य

ब्राह्मणों ने कहा– मुनिश्रेष्ठ! यदि हम लोगों पर आपका अनुग्रह हो तो उन श्रेष्ठ कर्मों का वर्णन कीजिये, जिनसे संसार में कीर्ति और धर्म की प्राप्ति होती है।

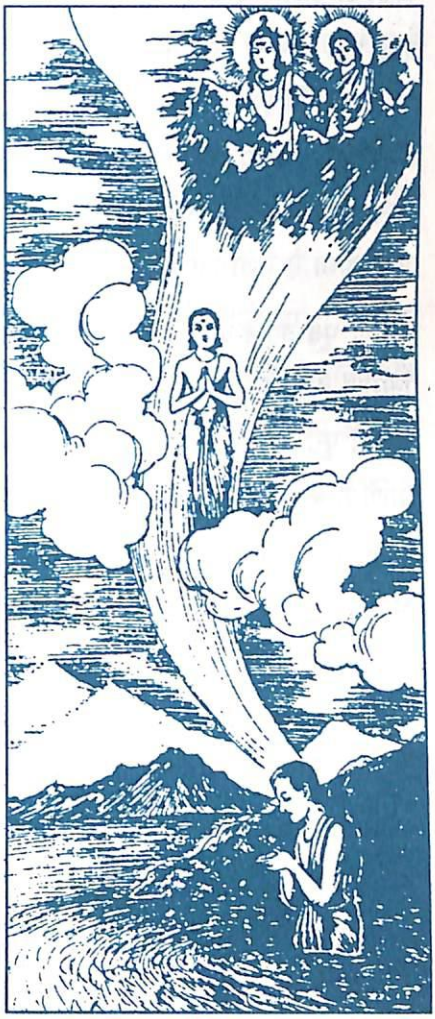

व्यास जी ने कहा – जिसके खुदवाये हुए पोखरे में अथवा वन में गौएँ एक मास तक या सात दिनों तक तृप्त रहती हैं, वह पवित्र हो कर सम्पूर्ण देवताओं द्वारा पूजित होता है। विशेषतः प्रतिष्ठा के द्वारा पवित्र हुई पोखरी के जल का दान करने से जो फल होता है, वह सब सुनो। पोखरे में जब मेघ वर्षा करता है, उस समय जल के जितने छींटे उछलते हैं, उतने ही हजार वर्षों तक पोखरा बनवाने वाला मनुष्य स्वर्ग लोक का सुख भोगता है। जल से खेती पकती है, जिससे मनुष्य को प्रसन्नता होती

है। जल के बिना प्राणों का धारण करना असम्भव है। पितरों का तर्पण, शौच, सुन्दर रूप और दुर्गन्ध का नाश - ये सब जल पर ही निर्भर हैं। इस जगत् में संग्रह किये हुए सम्पूर्ण बीजों का आधार जल ही है। कपड़े धोना और बर्तनों को मांज-धोकर चमकीला बनाना भी जल के ही अधीन है, इसी से प्रत्येक कार्य में जल को पवित्र माना गया है। अतः सब प्रकार से प्रत्यत्न करके सारा बल और सारा धन लगाकर बावली, कुआं तथा पोखरा बनवाने चाहिए। जो निर्जल प्रदेश में जलाशय बनवाता है, उसे प्रतिदिन इतना पुण्य होता है, जिससे वह एक-एक दिन के पुण्य के बदले एक-एक कल्प तक स्वर्ग में निवास करता है। जो पुरुष प्रतिदिन दूसरों के उपकार के लिए चार हाथ कुआं खोदता है, वह एक-एक वर्ष के पुण्य का एक-एक कल्प तक स्वर्ग में रहकर उपभोग करता है। जलाशय बनाने का उपदेश देने वाले को एक करोड़ वर्षों तक स्वर्ग का निवास प्राप्त होता है तथा जो स्वयं बनवाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है।

पूर्व काल की बात है, किसी धनी के पुत्र ने एक विख्यात जलाशय का निर्माण कराया, जिसमें उसने दस हजार सोने की मुहरें व्यय की थीं। धनी ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्राण-पण से चेष्टा करके बड़ी श्रद्धा के साथ सम्पूर्ण प्राणियों के उपकार के लिए वह कल्याणमय जलाशय तैयार कराया था। कुछ काल के पश्चात् वह निर्धन हो गया। उसके बाद एक दूसरा धनी उसके पास आया और उससे कहा कि वह उसके बनवाये हुए जलाशय के लिए उसे दस हजार स्वर्ण-मुद्राएं देगा। इसे खुदवाने का पुण्य तो तुम्हें मिल ही चुका है। मैं केवल मूल्य देकर इसके ऊपर अपना अधिकार करना चाहता हूँ। यदि तुम्हें लाभ जान पड़े तो मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो। धनी के ऐसा कहने पर जलाशय निर्माण कराने वाले ने उसे इस प्रकार उत्तर दिया - भाई ! दस हजार का पुण्य फल तो इस जलाशय से मुझे रोज ही प्राप्त होता है। पुण्यवेत्ताओं ने जलाशय-निर्माण का ऐसा ही पुण्य माना है। इस निर्जल प्रदेश में मैंने यह कल्याणमय सरोवर निर्माण कराया है, इसमें सब लोग अपनी इच्छा से स्नान और जलपान आदि कार्य करते हैं।

उसकी यह बात सुनकर लोगों ने खूब हंसी उड़ायी। तब वह लज्जा से पीड़ित होकर बोला- 'हमारी यह बात सच है, विश्वास न हो तो धर्मानुसार इसकी परीक्षा कर लो।' धनी ने ईर्ष्यापूर्वक कहा- 'बाबू ! मेरी बात सुनो। मैं पहले तुम्हें दस हजार स्वर्ण मुद्राएं देता हूँ। इसके बाद पत्थर लाकर जलाशय में डालूंगा। पत्थर स्वाभाविक ही पानी में डूब जायेंगे। फिर यदि समयानुसार पानी में आकर तैरने लगेंगे तो मेरा रुपया मारा जायेगा।' नहीं तो इस जलाशय पर धर्मतः मेरा अधिकार हो जायेगा।' जलाशय बनवाने वाले ने 'बहुत अच्छा', कहकर उससे दस हजार मुद्राएं ले ली और अपने सामने उस महान् जलाशय में पत्थर गिराया। उसके इस कार्य को मनुष्यों, देवताओं और असुरों ने भी देखा। तब धर्म के साक्षी ने धर्म तुला पर दस हजार स्वर्ण मुद्राएं और जलाशय के जल को तोला, किन्तु वे मुद्राएं जलाशय से होने वाले एक दिन के जल-दान की भी तुलना न कर सकीं। अपने धन को व्यर्थ जाते देख धनी के हृदय को बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन वह पत्थर भी द्वीप की भांति जल के ऊपर तैरने लगा। यह देख लोगों में बड़ा कोलाहल मचा। इस अद्‌भुत घटना की बात सुनकर धनी और जलाशय का स्वामी दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहां आये। पत्थर को उस अवस्था में देख धनी ने अपनी दस हजार मुद्राएं उसी की मान लीं। तत्पश्चात् जलाशय के स्वामी ने ही वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

नष्ट होते हुए जलाशय को पुनः खुदवाकर उसका उद्धार करने से जो पुण्य होता है, उसके द्वारा मनुष्य स्वर्ग में निवास करता है तथा प्रत्येक जन्म में वह शान्त और सुखी होता है। अपने गोत्र के मनुष्य, माता के कुटुम्बी, राजा, सगे-संबंधी, मित्र और उपकारी पुरुषों के खुदवाये हुए जलाशय का जीर्णोद्धार करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। तपस्वियों, अनाथों और विशेषतः ब्राह्मणों के लिए जलाशय खुदवाने से भी मनुष्य अक्षय स्वर्ग सुख भोगता है। इसलिए ब्राह्मणों ! जो अपनी शक्ति के अनुसार जलाशय आदि का निर्माण करता है, वह

सब पापों के क्षय हो जाने से अक्षय पुण्य तथा मोक्ष को प्राप्त होता है। जो धार्मिक पुरुष लोक में इस महान् धर्ममय उपाख्यान को सुनाता है, उसे सब प्रकार के जलाशय दान करने का फल होता है। सूर्य ग्रहण के समय गंगाजी के उत्तम तट पर एक करोड़ गोदान करने का जो फल होता है, वही इस प्रसंग को सुनने से मनुष्य प्राप्त कर लेता है।

जलाशय के तट पर चारों ओर पवित्र वृक्षों को लगाता है, उसके पुण्यफल का वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्य स्थानों में पेड़ लगाने से फल का लाभ होता है, जल के समीप लगाने पर उसकी अपेक्षा करोड़ों गुना अधिक फल होता है। अपने बनवाये हुए पोखरे के किनारे वृक्ष लगाने वाला मनुष्य अनन्त फल का भागी होता है।

जलाशय के समीप पीपल का वृक्ष लगाकर मनुष्य जिस फल को प्राप्त करता है वह सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं मिल सकता। प्रत्येक पर्व के दिन जो उसके पत्ते जल में गिरते हैं, वे पिण्ड दान के समान हो कर पितरों को अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं तथा उस वृक्ष पर रहने वाले पक्षी अपनी इच्छा के अनुसार जो फल खाते हैं, उसका ब्राह्मण-भोजन के समान अक्षय फल होता है। गर्मी के समय गौ, देवता और ब्राह्मण जिस पीपल की छाया में बैठते हैं, उसे लगाने वाले मनुष्य के पितरों को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अतः सब प्रकार से प्रयत्न करके पीपल का वृक्ष लगाना चाहिए। एक वृक्ष लगा देने पर भी मनुष्य स्वर्ग से भ्रष्ट नहीं होता। रसों के क्रय-विक्रय के लिये नियत रमणीय स्थान पर, मार्ग में और जलाशय के किनारे जो वृक्ष लगाता है, वह मनोरस स्वर्ग को प्राप्त होता है।

पद्म पुराण-स्वर्गः-खण्ड

धर्मतीर्थ आदि की महिमा, स्वर्ग तथा नरक में ले जाने वाले शुभाशुभ कर्मों के वर्णन में देवदूत ने कहा है कि – बावड़ी, कुआं और पोखरे बनवाने आदि के पुण्य का कभी अन्त नहीं होता, क्योंकि वहां जलचर

और थलचर जीव सदा अपनी इच्छा के अनुसार जल पीते रहते हैं। देवता भी बावली आदि बनवाने वाले को नित्य दान परायण कहते हैं। वैश्यवर ! प्राणी जैसे-जैसे बावली आदि का पानी पीते हैं, वैसे-वैसे धर्म की वृद्धि होने से उसके बनवाने वाले मनुष्य के लिए स्वर्ग का निवास अक्षय होता जाता है। जल प्राणियों का जीवन है। जल के ही आधार पर प्राण टिके हुए हैं। पातकी मनुष्य भी प्रतिदिन स्नान करने से पवित्र हो जाते हैं। प्रातःकाल का स्नान बाहर और भीतर के मल को भी धो डालता है। प्रातः स्नान से निष्पाप होकर मनुष्य कभी नरक में नहीं पड़ता। जो बिना स्नान किये भोजन करता है, वह सदा मल का भोजन करने वाला है। जो मनुष्य स्नान नहीं करता, देवता और पितर उससे विमुख हो जाते हैं। वह अपवित्र माना जाता है, वह नरक भोग कर कीट योनि को प्राप्त होता है, जो लोग नदी की धारा में स्नान करते हैं, वे न तो नरक में पड़ते हैं और न किसी नीच योनि में ही जन्म लेते हैं। उनके लिये बुरे स्वप्न और बुरी चिन्ताएं सदा निष्फल होती हैं।

पद्म पुराण-पाताल-खण्ड

देवताओं द्वारा श्री राम की स्तुति, रामराज्य का वर्णन, में देवताओं की प्रार्थना स्वीकारते हुए कहा है कि - देवताओं ! सदा इष्ट यज्ञ योगादि और आपूर्त कुएं, बावली, पोखरे खुदवाने, बगीचे लगवाने आदि के अनुष्ठान करने वाले लोगों के द्वारा उस राज्य की जड़ और मजबूत होती थी। समूचे राष्ट्र में सदा हरी-भरी खेती लहराती रहती थी। देश सुन्दर और प्रजा समृद्धि का प्रतीक बताया है।

उत्तर खण्ड-पद्म पुराण

जलदान, तडाग-निर्माण की महिमा- नारदजी एवं महादेवजी का संवाद

नारद जी ने पूछा- भगवान् ! गुणों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दान देने की इच्छा

रखने वाला मनुष्य इस लोक में किन-किन वस्तुओं का दान करे ? यह सब बताइये।

महादेव जी बोले - देवर्षि प्रवर ! जल का दान भी श्रेष्ठ है, वह सदा सब दानों में उत्तम है। इसलिए बावली, कुआं और पोखर बनवाना चाहिए। जिसके खोदे हुए जलाशय में गौ, ब्राह्मण और साधु पुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने कुल को तार देता है। नारद ! जिसके पोखरे में गर्मी के समय तक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकट का सामना नहीं करता। पोखरा बनवाने वाला पुरुष तीनों लोकों में सर्वत्र सम्मानित होता है। मनीषी पुरुष धर्म, अर्थ और काम का यही फल बतलाते हैं कि देश में खेत के भीतर उत्तम पोखर बनवाया जाये। जो प्राणियों के लिए महान् आश्रय हो। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस तथा स्थावर प्राणी भी जलाशय का आश्रय लेते हैं। जिसके पोखरे में केवल वर्षा ऋतु में ही जल रहता है उसे अग्निहोत्र का फल मिलता है। जिसके तालाब में हेमन्त और शिशिर काल तक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदान का फल मिलता है। यदि वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु तक पानी रुकता हो तो मनीषी पुरुष अतिरात्र और अश्वमेध यज्ञों का फल बतलाते हैं।

नारद पुराण-पूर्व भाग-प्रथम पाद

तडाग-निर्माण जनित पुण्य के विषय में राजा वीरभद्र की कथा-भगीरथ एवं धर्मराज संवाद

भगीरथ ने कहा - भगवान्! आप सब धर्मों के ज्ञाता हैं। परमेश्वर ! आप समदर्शी भी हैं, मैं जो कुछ पूछता हूँ, कृपा करके बताइये। धर्म कितने प्रकार के कहे गये हैं ? धर्मात्मा पुरुषों के कौन से लोक हैं ? यमलोकों में कितनी यातनाएँ बतायी गई हैं और वे किन्हें प्राप्त होती हैं ? और कितने लोग आपके द्वारा दण्डनीय हैं ? यह सब मुझे बताने की कृपा करें।

धर्मराज ने कहा- महाबुद्धे! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तुम्हारी बुद्धि निर्मल और ओजस्विनी है। मैं धर्म-अधर्म का यथार्थ वर्णन करता हूँ, तुम भक्तिपूर्वक सुनो! धर्म अनेक प्रकार के बताये गये हैं, जो पुण्य लोक प्रदान करने वाले हैं। इसी प्रकार अधर्म की यातनाएं अनेक हैं। जो स्वयं अथवा दूसरे के द्वारा तालाब बनवाता है, उसके पुण्य की संख्या बताना असंभव है। राजन्! यदि एक राही भी पोखरे का जल पी ले तो उसके बनाने वाले पुरुष के सब पाप अवश्य नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य एक दिन भी भूमि पर जल का संग्रह या संरक्षण कर लेता है, वह सब पापों से छूट कर सौ वर्षों तक स्वर्ग लोक में निवास करता है। जो मानव अपनी शक्ति पर तालाब खोदने में सहायता करता है, जो उससे संतुष्ट होकर उसको प्रेरणा देता है, वह भी पोखरे बनाने का पुण्य फल पा लेता है। जो **सरसों बराबर मिट्टी** भी तालाब से निकालकर बाहर फेंकता है, वह अनेकों पापों से मुक्त हो सौ वर्षों तक स्वर्ग में निवास करता है। नृपश्रेष्ठ! जिस पर देवता अथवा गुरुजन संतुष्ट होते हैं, वह पोखरा खुदाने के पुण्य का भागी होता है- यह सनातन श्रुति है।

नृपश्रेष्ठ! इस विषय में मैं तुम्हें एक इतिहास बतलाता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है। - इसमें संशय नहीं है। गौड़ देश में वीरभद्र नाम के राजा हो गये हैं। वे बड़े प्रतापी, विद्वान् तथा सदैव ब्राह्मणों की पूजा करने वाले थे। वेद और शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार कुलोचित सदाचार का वे सदा पालन करते और मित्रों के अभ्युदय में योग देते थे। उनकी सौभाग्यवती रानी का नाम चम्पाकमंजरी था। उनके मुख्य मंत्रीगण कर्तव्य और अकर्तव्य के विचार में कुशल थे, वे सदा धर्मशास्त्रों द्वारा धर्म का निर्णय किया करते थे। जो प्रायश्चित, चिकित्सा, ज्योतिष तथा धर्म का निर्णय बिना शास्त्र के करता है, उसे ब्रह्मघाती बताया गया है। मन-ही-मन ऐसा सोचकर राजा सदा अपने आचार्यों से मनु आदि के बताये हुए धर्मों का विधिपूर्वक श्रवण किया

करते थे। उनके राज्य में कोई छोटे-से-छोटा मनुष्य भी अन्याय का आचरण नहीं करता था। उस राजा का धर्मपूर्वक पालित होने वाला देश स्वर्ग की समता धारण करता था। वह शुभ कारक उत्तम राज्य का आदर्श था। एक दिन राजा वीरभद्र मंत्री आदि के साथ मिलकर शिकार खेलने के लिए बहुत बड़े वन में गये और दोपहर तक इधर-उधर धूमते रहे। वे अत्यन्त थक गये थे। भगीरथ! उस समय वहां राजा को एक छोटी सी पोखरी दिखाई दी। वह भी सूखी हुई थी। उसे देखकर मंत्री ने सोचा- पृथ्वी के ऊपर इस शिखर पर यह पोखरी किसने बनाई है? यहां कैसे जल सुलभ होगा, जिससे ये राजा वीरभद्र प्यास बुझाकर जीवन धारण करेंगे। नृपश्रेष्ठ! तदन्तर मंत्री के मन में उस पोखरी को खोदने का विचार हुआ। उसने एक हाथ का गड्ढ़ा खोदकर उसमें से जल प्राप्त किया। राजन्! उस जल को पीने से राजा और उसके बुद्धिसागर नामक मंत्री को भी तृप्ति हुई। तब धर्म-कर्म के ज्ञाता बुद्धिसागर ने राजा से कहा- राजन्! यह पोखरी पहले वर्षा के जल से भरी थी। अब इसके चारों ओर बांध बना दें - ऐसी मेरी सम्मति है। देव! निष्पाप राजन्! आप इसका अनुमोदन करें और इसके लिए मुझे आज्ञा दें। 'नृपश्रेष्ठ वीरभद्र अपने मंत्री की यह बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और इस काम को करने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने अपने मंत्री बुद्धिसागर को ही इस शुभ कार्य में नियुक्त किया। तब राजा की आज्ञा से अतिशय पुण्यात्मा बुद्धिसागर उस पोखरी को सरोवर बनाने के कार्य में लग गये। उसकी लम्बाई-चौड़ाई चारों ओर से पचास धनुष की हो गयी। उसके चारों ओर पत्थर के घाट बन गये और उसमें अगाध जलराशि संचित हो गयी। ऐसी पोखरी बनाकर मंत्री ने राजा को सब समाचार निवेदन किया। तब से सब वनचर जीवन और प्यासे पथिक उस पोखरी से उत्तम जल-पान करने लगे। फिर आयु की समाप्ति होने पर किसी समय मंत्री बुद्धिसागर की मृत्यु हो गयी। राजन्! वे मुझे धर्मराज के लोक में ले गये। उनके लिये मैंने चित्रगुप्त से धर्म पूछा, तब चित्रगुप्त ने उनके पोखरी बनाने का सब कार्य

मुझे बताया। साथ ही यह भी कहा कि ये राजा को धर्म-कार्य का स्वयं उपदेश करते थे, इसलिये इस धर्मविमान पर चढ़ने के अधिकारी हैं। राजन्! चित्रगुप्त के ऐसा कहने पर मैंने बुद्धिसागर को विमान पर चढ़ने की आज्ञा दे दी। भागीरथ! फिर कालान्तर में राजा वीरभद्र की मृत्यु के पश्चात् मेरे स्थान पर गये और प्रसन्नतापूर्वक मुझे नमस्कार किया। तब वहां उनके सम्पूर्ण धर्मों के विषय में भी प्रश्न किया, राजन! मेरे पूछने पर चित्रगुप्त ने राजा के लिए भी पोखरे खुदवाने से होने वाले धर्म की बात बतायी। तब मैंने राजा को जिस प्रकार भली-भांति समझाया, वह सुनो।

मैंने कहा- 'भूपाल भगीरथ ! पूर्वकाल में सैकतगिरि के शिखर पर उस लावक 'एक प्रकार की चिड़िया' पक्षी ने जल के लिए अपनी चोंच से दो अंगुल भूमि खोद ली थी। नृपश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कालान्तर में उसे वाराह ने अपनी थूथुन से एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा। तब से उसमें हाथ भर जल रहता था। उसके बाद किसी समय उस लावक एक पक्षी ने उसे पानी में खोदकर दो हाथ गहरा कर दिया। महाराज! तब से उसमें दो महीने जल टिकने लगा। वन के छोटे-छोटे जीव प्यास से व्याकुल होने पर उस जल को पीते थे। सुव्रत ! उसके तीन वर्ष के बाद एक हाथी ने उस गड्ढे को तीन हाथ गहरा कर दिया। अब उसमें अधिक जल संचित होकर तीन महीने तक टिकने लगा। जंगली जीव-जन्तु उसको पीया करते थे। फिर जल सूख जाने के बाद आप उस स्थान पर आये। वहां एक हाथ मिट्टी खोदकर आपने जल प्राप्त किया। नरपते! तदन्तर मंत्री बुद्धिसागर के उपदेश से आपने पचास धनुष की लंबाई-चौथाई में उसे उतना ही गहरा खुदवाया। फिर तो उसमें बहुत जल संचित हो गया। इसके बाद पत्थरों से दृढ़तापूर्वक घाट बंध जाने पर वह महान् सरोवर बन गया। वहां किनारे पर सब लोगों के लिए उपकारी वृक्ष लगा दिये गये। उस पोखरे के द्वारा अपने-अपने पुण्य से पांच जीव धर्म विमान पर आरूढ़ हुए हैं। अब छठे तुम भी उस पर चढ़ जाओ। 'भगीरथ! मेरा यह वचन सुनकर छठे राजा वीरभद्र भी उन पाँच के

समान ही पुण्यभागी होकर उस धर्म विमान पर जा बैठे। राजन्! इस प्रकार मैंने पोखरे बनवाने से होने वाले सम्पूर्ण फल का वर्णन किया। इसे सुनकर मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक के पाप से मुक्त हो जाता है। जो मानव श्रद्धापूर्वक इस कथा को सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी तालाब बनाने के सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त कर लेता है।

तडाग की महिमा

धर्मराज कहते हैं- राजन्! कासार 'कच्चे पोखरे' बनाने पर तडाग 'पक्के पोखरे' बनाने की अपेक्षा आधा फल बताया गया है। कुएं बनाने पर एक चौथाई फल जानना चाहिये, बावड़ी बनाने पर कमलों से भरे सरोवर के बराबर पुण्य प्राप्त होता है। भूपाल! नहर निकालने पर बावड़ी की अपेक्षा सौ गुना फल प्राप्त होता है। धनी पुरुष पत्थर से मन्दिर या तालाब बनावे और गरीब पुरुष मिट्टी से बनावे तो उन दोनों को समान फल प्राप्त होता है। यह ब्रह्मा जी का कथन है। धनी पुरुष एक नगर दान करें और गरीब एक हाथ भूमि दें, इन दोनों के दान का समान फल है - ऐसा वेदवेत्ता पुरुष कहते हैं। जो धनी पुरुष उत्तम फल के साधन भूत तडाग का निर्माण करता है और गरीब एक कुआँ बनवाता है। उन दोनों का पुण्य समान कहा है। जो बहुत से प्राणियों का उपकार करने वाला आश्रय या धर्मशाला बनवाता है, वह तीन पीढ़ियों के साथ ब्रह्मलोक में जाता है। राजन्! जो बगीचे लगाते, देव मन्दिर बनवाते, पोखर खुदाते, अपना गाँव बसाते हैं, वे भगवान् विष्णु के साथ पूजित होते हैं।

उमा संहिता - शिव पुराण

जलाशय का निर्माण इस लोक और परलोक में भी महान् आनन्द की प्राप्ति कराने वाला होता है– यह सत्य है। इसमें संशय नहीं है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह कुआं, बावड़ी और तालाब बनवाये। कुएं में जब पानी निकल आता है, तब वह पापी पुरुष के पाप कर्म का आधा भाग हर लेता है

तथा सत्कर्म में लगे हुए मनुष्य के सदा समस्त पापों को हर लेता है। जिसके खुदवाये जलाशय में गौ, ब्राह्मण तथा साधु पुरुष सदा पानी पीते हैं, वह अपने सारे वंशों का उद्धार कर देता है। जिसके जलाशय में गर्मी के मौसम में भी अनिवार्य रूप से पानी टिका रहता है, वह कभी दुर्गम एवं विषम संकट को नहीं प्राप्त होता। जिसके पोखरे में केवल वर्षा-ऋतु में जल ठहरता है, उसे प्रतिदिन अग्निहोत्र करने का फल मिलता है- ऐसा ब्रह्मा जी का कथन है। जिसके तड़ाग में शरदकाल तक जल ठहरता है, उसे सहस्र गोदान का फल मिलता है। इसमें संशय नहीं है। जिसके तालाब में हेमन्त और शिशिर-ऋतु तक पानी मौजूद रहता है, वह बहुत सी स्वर्ण-मुद्राओं की दक्षिणा से युक्त यज्ञ का फल पाता है। जिसके सरोवर में वसन्त और ग्रीष्म काल तक पानी बना रहता है, उसे अतिरात्र और अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है- ऐसा मनीषी महात्माओं का कथन है। मुनिवर व्यास! जीवों को तृप्ति प्रदान करने वाले जलाशय के उत्तम फल का वर्णन किया गया।

विद्येश्वर संहिता में भी जलाशय, कुआं, बावड़ी, पोखरे बनवाये जाने का वृतान्त आया है।

अट्ठावनवां अध्याय-मत्स्य पुराण

तालाब, बगीचा, कुआं, बावड़ी, पुष्करणी बनवाने का माहात्म्य

मत्स्य भगवान् ने कहा– जिस पोखरे में वर्षाकाल में ही जल रहता है, वह अग्निष्टोम यज्ञ के बराबर फल देने वाला होता है। जिसमें शरदकाल तक जल रहता हो, उसका भी वही फल है। हेमन्त और शिशिरकाल तक रहने वाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञ का फल देता है। वसन्तकाल तक टिकने वाले जल को अश्वमेध यज्ञ के समान फलदायक बतलाया गया है तथा

जो जल ग्रीष्मकाल तक वर्तमान रहता है, वह राजसूय यज्ञ से भी अधिक फल देने वाला होता है।

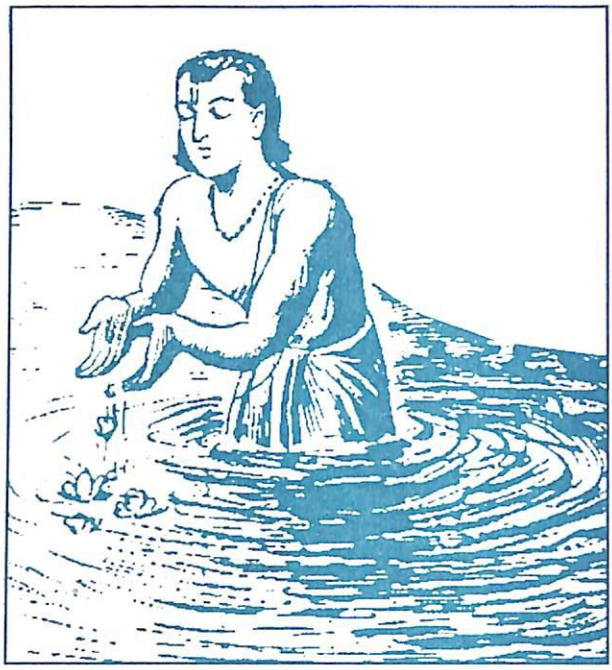

महाराज! जो मनुष्य पृथ्वी पर इन विशेष धर्मों का पालन करता है, व शुद्धचित्त होकर शिवजी के लोक में जाता है और वहां अनेक कल्पों तक दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। वह पुनः परार्ध 'ब्रह्मा जी की पिछली आधी आयु' तक देवांगनाओं के साथ अनेक महत्तम लोकों का सुख भोगने के पश्चात् ब्रह्मा जी के साथ ही योगबल से श्री विष्णु के परमपद को प्राप्त होता है।

महाभारत - अनुशासन पर्व, नाना प्रकार के शुभकर्मों का और जलाशय बनाने तथा बगीचे लगाने का फल- युधिष्ठिर एवं भीष्म जी का संवाद

युधिष्ठिर ने कहा– पितामह! बगीचे लगाने और जलाशय बनवाने का जो फल होता है, उसको मैं आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ।

भीष्म जी ने कहा– युधिष्ठिर, जहां का दृश्य सुन्दर हो, जहां अन्न की उपज अधिक होती हो, जो नाना प्रकार के धातुओं से विभूषित एवं विचित्र दिखलाई देती हो तथा जहां सब प्रकार के प्राणी निवास करते हों, वही भूमि उत्तम मानी गयी है। इसमें तालाब एवं सब प्रकार के जलाशय 'कूप' आदि

बनवाना उत्तम क्षेत्र 'तीर्थ' के समान है। अब मैं तालाब या पोखरे खुदवाने के पुण्य का वर्णन करता हूँ। तालाब बनवाने वाला मनुष्य तीनों लोकों में सर्वत्र पूज्य माना जाता है। तालाब मित्र के घर की भांति उपकारी, सूर्य देवता को प्रसन्न करने वाला तथा देवताओं की पुष्टि करने वाला है। पोखर खुदवाना अपनी कीर्ति फैलाने का सर्वोत्तम उपाय है, इससे धर्म, अर्थ और कामरूप फल की प्राप्ति होती है। देश में तालाब बनवाने का पुण्य एक महान् क्षेत्र के समान है, वह चारों प्रकार के प्राणियों के लिये बहुत बड़ा आधार हो जाता है। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, नाग, राक्षस तथा समस्त स्थावर प्राणी जलाशय का आश्रय लेते हैं, अतः ऋषियों ने तालाब बनवाने से जिस फल की प्राप्ति बतलायी है, वह मैं तुम्हें बतला रहा हूँ, सुनो - जिसके खुदवाये पोखरे में बरसात भर पानी रहता है उसको अग्निहोत्र का फल प्राप्त होता है। जिसके तालाब में शरद्काल तक पानी ठहरता है वह मरने के पश्चात् एक हजार गोदान का फल प्राप्त करता है, जिसके जलाशय में हेमन्त 'अगहन-पौस' तक पानी रुकता है, वह ऐसे यज्ञ का फल प्राप्त करता है, जिसमें स्वर्ण की बहुत सी दक्षिणा दी जाती है। जिसके पोखरे में माघ-फाल्गुन तक जल रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है। जिसके बनवाये हुए तालाब का पानी चैत्र-वैशाख तक समाप्त नहीं होता, वह अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा जिसके तालाब का जल जेठ-आषाढ़ में भी मौजूद रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है जिसके खुदवाये जलाशय में गौएं तथा साधु पुरुष पानी पीते हैं, वह अपने समस्त कुलों को तार देता है। जिसके पोखरे में प्यासी हुई गायें तथा मृग, पक्षी और मनुष्य जल पीते हैं, वह अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। यदि किसी के पोखरे में लोग स्नान करते, पानी पीते और विश्राम करते हैं तो इन सबका पुण्य उस पुरुष को मरने के बाद अक्षय सुख प्रदान करता है। **पानी दुर्लभ पदार्थ है। परलोक में उसका मिलना और भी कठिन है, जो जल का दान करते हैं, वे ही वहां**

सदा तृप्त रहते हैं। पानी का दान सब दानों में भारी और सब दानों से श्रेष्ठ है, अतः उसका दान अवश्य करना चाहिए।

महाभारत- शान्ति पर्व

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'गीता उपदेश' के समय अपने नामों की व्याख्या में बताया कि नर पुरुष से उत्पन्न होने के कारण जल को नार कहते हैं, वह नार 'जल' पहले मेरा अयन 'निवास स्थान' था, इसलिए मैं 'नारायण' कहलाता हूँ।

महाभारत-यमलोक के मार्ग कष्ट और उससे बचने के उपाय- युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण संवाद

युधिष्ठिर बोले– 'देवेश्वर! यमलोक के मार्ग का विस्तृत वर्णन सुनकर मुझे बड़ा भय हो गया है। अब यह बताने की कृपा कीजिये कि मनुष्य किस उपाय से विकट मार्ग को सुखपूर्वक तय कर सकते हैं?'

भगवान् ने कहा– पाण्डुनन्दन! इस संसार में जो लोग धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं, जीव हिंसा से अलग रहकर गुरुजनों की सेवा में लगे रहते हैं, देवता तथा ब्राह्मणों की पूजा करते हैं और ब्राह्मणों को नाना प्रकार की वस्तुएं दान देते हैं, वे यमलोक में सुखपूर्वक जाते हैं। जिन्होंने इस लोक में बावड़ी, कुएँ, तालाब, पोखरे, पोखरियां और जल से भरे हुए जलाशय बनवाये हैं, वे चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और दिव्य घण्टानाद से निनादित विमानों पर बैठ कर यमलोक में जाते हैं, उस समय वे महात्मा नित्यतृप्त और महान् कान्तिमान दिखाई देते हैं तथा दिव्यलोक के पुरुष उन्हें ताड़ के पंखे और चंवर झुलाया करते हैं। जो लोग देवताओं के उद्देश्य से प्याऊ बनवाकर वहां गडुएं के द्वारा प्यासे मनुष्यों को ठंडे जल पिलाया करते हैं, वे उस महान् मार्ग पर अत्यन्त तृप्त होकर सुख के साथ यात्रा करते हैं।

शक्ति का प्रतीक जलाशय निर्माण– महाभारत में जयद्रथ-वध प्रसंग में एक जगह यह वृतान्त आया है कि जब युद्ध क्षेत्र में कौरव और पाण्डव पक्ष की सेनाएं युद्ध कर रही थी तो युद्ध करते-करते सभी योद्धा भी थक चुके थे। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि हे धनंजय, हमारे घोड़े रणभूमि में बुरी तरह से थक चुके हैं, घायल भी हैं और प्यास से बहुत व्याकुल हैं। इन्हें जल चाहिए, लेकिन ये इस क्षेत्र के जलाशयों का जल नहीं पीयेंगे, इन्हें दिव्य जल चाहिए। श्री कृष्ण के ऐसा कहने पर अर्जुन ने दिव्य जल की इच्छा से गाण्डीव पर बाण का अनुसंधान कर अभिमंत्रित किया और भूमि पर छोड़ दिया, जिसके प्रभाव से दिव्य जल से परिपूर्ण एक जलाशय का निर्माण हुआ। अर्जुन ने जलाशय के बीच में श्री कृष्ण के विश्राम के लिए बाणों की कुटी का भी निर्माण कर दिया। वासुदेव ने रथ से घोड़ों को खोल दिया, जलाशय में जल पिलाया और घोड़ों सहित बाणों से निर्मित कुटी में चले गये। कुटी में घोड़ों को आराम कराया, स्वास्थ्य लाभ के लिए औषधियां दी। जब घोड़े पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये तो पुनः कुटी से निकलकर रणभूमि में रथ जोड़ दिये। इस समयान्तराल में जो भी घटनाएं घटित हुई, वह सब शत्रु पक्ष की सेना के सामने हुई। जिसे वह कौतूहल वश देख रहे थे। अर्जुन के पुरुषार्थ से कौरव सेना बुरी तरह से भयभीत हो गई थी।

दिव्य जल- कुरुक्षेत्र की रणभूमि में बाणशय्या पर लेटे हुए भीष्म पितामह को इस लोक की वस्तु मात्र में केवल जल पीने की इच्छा हुई थी जो अन्य लोकों में दुर्लभ ही नहीं, असंभव भी है। उनके पास कौरव-पाण्डव, भगवान श्री कृष्ण सहित दोनों पक्षों के अन्य प्रतिनिधि मौजूद थे। पितामह ने जल पीने की इच्छा व्यक्त की, सभी अपनी-अपनी शक्तिनुसार सोने-चांदी के पात्रों में जल लेकर उपस्थित हुए। भीष्म जी ने वह जल पीने से इनकार कर दिया। तब अर्जुन की तरफ देख कर कहा तात्! दिव्य जल लाओ, अर्जुन ने पितामह का मन्तव्य समझ

गांडीव पर दिव्य जल की इच्छा से बाण को अभिमंत्रित कर पृथ्वी पर छोड़ा, वहीं से जल धारा निकली और सीधे पितामह के मुँह में गई। दिव्य जल से भीष्म पिता की प्यास तृप्ति हुई। यह दृश्य सभी उपस्थित जनों ने देखा। आज भी लोक जनमानस में वह दिव्य जल धारा बाणगंगा के रूप में समाहित है।

जल क्या है– युधिष्ठिर और यक्ष संवाद में भी आकाश, जल, अन्न क्या है ? का वृतान्त आया है। इससे जल की महत्वता का भान होता है।

सत्यार्थ प्रकाश- महर्षि दयानन्द सरस्वती

द्वादशसमुल्लासः समीक्षक के रूप में जैन समाज की श्राद्धदिनकृत्य आत्म निन्दा भावना 31 पर लिखा है कि बावड़ी, कुआं और तालाब न बनवाना चाहिए।

समीक्षक ने माना है कि अगर सब मनुष्य जैनमत हो जायें और कुआं, तालाब, बावड़ी आदि कोई न बनवावे तो सब लोग जल कहां से पीयें ?

तालाब आदि बनवाने से जीव मरते हैं, उससे बनवाने वाले को पाप लगता है, इसलिए जैनी लोग इस काम को नहीं करते।

समीक्षक – क्षुद्र-क्षुद्र जीवों के मरने से पाप गिनते हैं तो बड़े-बड़े गाय आदि पशु और मनुष्य यदि प्राणियों के जल पीने आदि से महापुण्य होगा, उसको क्यों नहीं गिनते ?

जलदान का माहात्म्य

सनत्कुमार जी कहते हैं– व्यास जी! जल दान सबसे श्रेष्ठ है। वह सब दानों में सदा उत्तम है, क्योंकि जल सभी जीव समुदाय को तृप्त करने वाला जीवन कहा गया है।

पानीदानं परम् दानानामुत्तमं तदा।
सर्वेपां जीवपुंजानां तर्पणं जीवनं स्मृताम।।

इसलिए बड़े स्नेह के साथ अनिवार्य रूप से प्रादान 'पौंसला' चलाकर दूसरों को पानी पिलाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

जल दान- 'दस कूप के समान एक बावड़ी होती है। दस बावड़ी के समान एक सरोवर होता है और दस सरोवरों के समान पुण्य-शालिनी वह 'प्रपा' पौंसला होती है जो जल रहित वन एवं देश में बनाई जाती है। उसके पुण्य से कर्ता स्वर्ग लोक का नायक बन जाता है।''

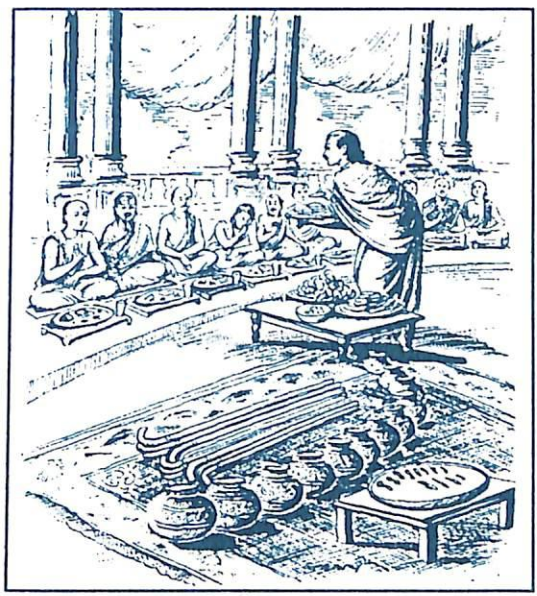

पद्मपुराण:- सृष्टि खण्ड

व्यास जी ने पौंसले 'प्याऊ' के विषय में बताया कि - जहाँ जल का अभाव हो, ऐसे मार्ग में पवित्र स्थान पर एक मण्डप बनायें। वह मार्ग ऐसा होना चाहिए, जहां बहुत से पथिकों का आना-जाना लगा रहता हो। वहां मण्डप में जल का प्रबन्ध रखें और गर्मी, बरसात तथा शरद् ऋतु में बटोहियों को जल पिलाते रहें। तीन वर्षों तक इस प्रकार पौंसले चालू रखने से पोखरा खुदवाने का पुण्य प्राप्त होता है। जो जलहीन प्रदेश में ग्रीष्म के समय एक मास तक पौंसला चलाता है, वह एक कल्प तक स्वर्ग में सम्मानपूर्वक निवास करता है। जो पोखरे आदि के फल को पढ़ता अथवा सुनता है, वह पाप से मुक्त होता है और उसके प्रभाव से उसकी सद्गति हो जाती है।

पद्म पुराण-भूमि : खण्ड

पापों और पुण्य के फलों का वर्णन में कहा है कि पानी का दान प्रेत लोक के लिये बहुत उत्तम है, इस प्रकार के दान विशेष से धर्मराज के नगर में सुखपूर्वक जाता है। कुंजल का अपने पुत्र विज्वल को उपदेश- जैमिनि ने कहा है कि जो मनुष्य सदा प्राणियों के प्राण लेने में लगे रहते हैं, पराई निन्दा में प्रवृत होते, कुएं, बगीचे, पोखरे और पौसले को दूषित करते, सरोवरों को नष्ट-भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियों को भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, वे सबके सब नरकगामी होते हैं।

श्री वराहपुराण - अध्याय : एक सौ दो

जलधेनु दान की विधि : राजा विनीताश्रव एवं पुरोहित होताजी संवाद।

पुरोहित होताजी कहते हैं - राजेन्द्र! अब 'जलधेनु' - दन का विधान बताता हूँ। किसी पवित्र दिन में सबसे पहले 'गोचर्म' के बराबर भूमि को गाय के गोबर से लीपकर उसके मध्यम भाग में जल, कपूर, अगरु और चन्दनयुक्त

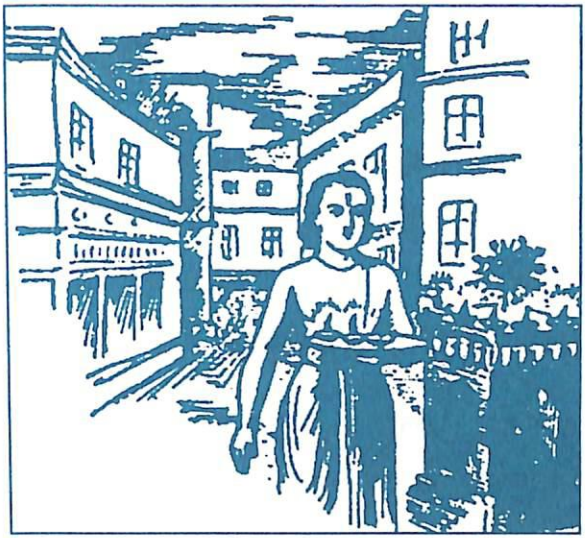

एक कलश स्थापित करें। फिर उस कलश में जलधेनु की धारणा कर इसी प्रकार के एक दूसरे कलश में बछड़े की कल्पना करें। फिर वहीं एक मंत्र पुष्पों से युक्त वर्द्धनीपात्र रखें। पूर्वोक्त कलश में दूर्वाकुंर, जटामासी, उशीर खस की जड़ कुष्ट संज्ञक औषधि, शिलाजीत, नेत्रबाला, पवित्र, रेणु, आंवले के फल, सरसों और सप्तधान्य आदि वस्तुओं को डालकर उसे पुष्प मालाओं से सजाना चाहिए। राजन्! फिर चारों दिशाओं में चार पात्रों की विशेष रूप से कल्पना करें। इनमें एक पात्र घृत से, दूसरा दही से, तीसरा मधु से तथा चौथा शर्करा से पूर्ण होना चाहिए। इस कल्पित धेनु में स्वर्णमय मुख एवं तांबे के श्रृग, पीठ तथा नेत्र की कल्पना करनी चाहिए। पास में कांसे की दोहनी रखें तथा उसके कुश के रोयें बनायें और सूत्र से उसकी पूंछ की रचना करें। पुनः वस्त्र-आभरण तथा घण्टिका से उसे सजा कर शुक्ति से दांत एवं गुड़ से मुख की रचना करें। चीनी से उस धेनु की जीभ और मक्खन से स्तनों का निर्माण कर ईख के चरण बनायें तथा चन्दन एवं फूलों से उस धेनु को सुशोभित कर काले मृग चर्म पर स्थापित करें। फिर चन्दन और फूलों से भलीभांति उसकी पूजा करके वेद के पारगामी ब्राह्मण यह दान ग्रहण करता है - वे सभी सौभाग्यशाली पुरुष पाप से मुक्त होकर विष्णु लोक में जाते हैं। राजन्! जिसने सदक्षिण अश्वमेध-यज्ञ किया और जिसने एक बार 'जलधेनु' का दान किया, उन दोनों का फल समान होता है। इस प्रकार जल

धेनु के दान करने वाले व्यक्ति के सभी पाप समाप्त हो जाते हैं और वे जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्ग को जाते हैं।

अध्याय 140 में भगवान् वराह पृथ्वी से कहते हैं कि देवि ! जहां इसमें मुख्य पर्वत से सदा जल की बूंदें भूमि पर गिरती हैं, उस स्थान को 'जलबिन्दु' तीर्थ कहते हैं।

शिव पुराण :- उमा संहिता

जल दान, जलाशय-निर्माण की महिमा- सनत्कुमार जी एवं व्यास जी संवाद -

सनत्कुमार जी कहते हैं- व्यास जी ! जल दान सबसे श्रेष्ठ है। वह सब दानों में सदा उत्तम है, क्योंकि जल सभी जीव समुदाय को तृप्त करने वाला जीवन कहा गया है।

पानीदानं परम् दानानामुत्तमं तदा।
सर्वेपां जीवपुंजानां तर्पणं जीवनं स्मृताम्।।

इसलिए बड़े स्नेह के साथ अनिवार्य रूप से प्रादान 'पौंसला, चलाकर दूसरों को पानी पिलाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

मार्कण्डेय पुराण

पुराण में जगह-जगह मनुष्य कर्म के अनुसार फल और यमपुरी में यमदूतों द्वारा दण्ड दिये जाने के दृष्टान्त आये हैं जिनमें जलदान, श्राद्ध, पितरों को तर्पण से मनुष्य को आत्मा की तृप्ति होती है और यमपुरी में यमराज के दण्ड से मुक्ति भी मिलती है।

जिन्होंने कभी जल का दान नहीं किया है, उन मनुष्यों को मृत्यु काल उपस्थित होने पर अधिक जलन होती है।

महाभारत- आश्वमेधिक पर्व, जल-दान का माहात्म्य, युधिष्ठिर एवं श्रीकृष्ण संवाद

वैशम्पायन जी कहते हैं- जनमेजय! यमपुर के मार्ग का वर्णन तथा वहां जीवों के सुखपूर्वक जाने का उपाय सुनाकर राजा युधिष्ठिर मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए और भगवान् श्री कृष्ण से फिर बोले - 'देवदेवेश्वर! आप सम्पूर्ण दैत्यों का वध करने वाले हैं, ऋषियों के समुदाय सदा आपकी ही स्तुति करते हैं। पडैश्वय से युक्त, भव-बंधन से मुक्ति देने वाले, श्री सम्पन्न और हजारों सूर्य के समान तेजस्वी हैं। आप ही से सब की उत्पत्ति हई है। आप धर्मों के ज्ञाता हैं और सम्पूर्ण धर्मों के प्रवर्तक हैं।

शान्त स्वरूप अच्युत! मुझे सब प्रकार के दानों का फल बतलाइये। दान किस प्रकार और कैसे ब्राह्मण को देना चाहिए? तथा किस तरह से तप का अनुष्ठान करके कहां उसका फल भोगा जाता है?

श्री कृष्ण ने कहा - राजन्! ध्यान से सुनो- सब प्रकार के दानों का फल परम्

पवित्र, उत्तम और पापों का नाश करने वाला है। यदि एक दिन भी गाय की प्यास बुझाने भर का जल, जो स्वयं ही जमीन खुदवाकर पैदा किया गया हो, दान किया जाये तो उससे सात पीढ़ी तक के पूर्वजों का उद्धार हो जाता है। संसार में जल को प्राणियों का जीवन माना गया है, उसके दान से जीवों की तृप्ति होती है। जल के गुण दिव्य हैं और वे परलोक में भी लाभ पहुंचाने वाले हैं। यम लोक में पुष्पोदक नाम वाली परम् पवित्र नदी है। वह जल दान करने वाले पुरुषों की सम्पूर्ण कामना पूर्ण करती है। उसका जल ठंडा होता है और ठंडे जल का दान करने वाले लोगों को सदा सुख पहुंचाता है। **प्यासे मनुष्य की प्यास अन्न से नहीं बुझती,** इसलिये समझदार मनुष्य को चाहिए कि वह प्यासे को सदा पानी पिलाया करे। सब प्राणी जल से पैदा होते और जल से ही जीवन धारण करते हैं, इसलिए जल-दान सब दानों से बढ़ कर माना गया है। सब प्रकार के दान, तप और यज्ञ से जो उत्तम फल प्राप्त होता है, वह सब जल के दान से मिल जाता है, इसमें तनिक भी संदेह की बात नहीं है।

तालाब खुदवाने के पुण्यफल से विशेष परिस्थिति में वंचित होने के कारण

श्री वामन पुराण

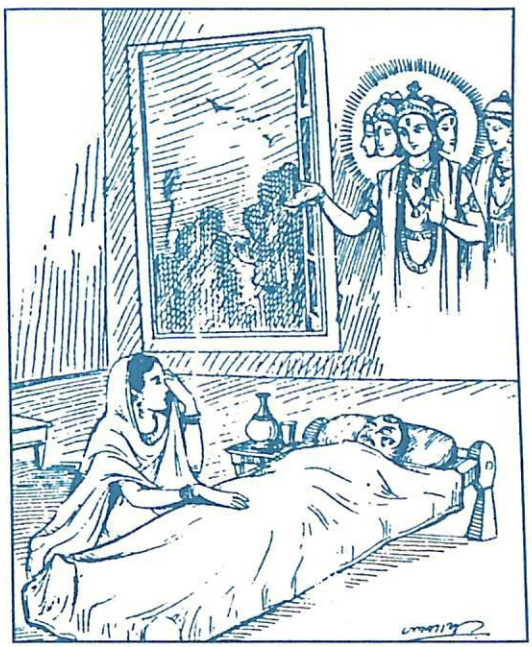

अध्याय 12 में सुकेशिका एवं ऋषि जन संवाद में आया है कि जो प्याऊ, पौंसार, कुआं, बावली और तडाग को तोड़कर नष्ट करते हैं, उन मनुष्यों के विलाप करते रहने पर भी भंयकर यमकिंकर सुतीक्ष्ण छुरिकाओं द्वारा उनकी चमड़ी उधेड़ते हैं - उनकी देह से चर्म को काटकर पृथक् करते रहते हैं।

शान्ति व क्षमा न जानने वाले मनुष्य के द्वारा यज्ञ और पुर्त 'तालाब खुदवाना' दोनों के फलों से वंचित हो जाता है। **प.पु.भू.ख.**

जो मनुष्य सदा प्राणियों के प्राण लेने में लगे रहते हैं और परायी निन्दा में प्रवृत होते हैं; कुएं, बगीचे, पोखरे और पौंसले को दूषित करते, सरोवरों को नष्ट-भ्रष्ट करते हैं, वे सब के सब नरकगामी होते हैं। **प.पु.भू.ख.**

दो सौ चौंतीसवां अध्याय-मत्स्य पुराण

जलाशयजनित विकृतियां और उनकी शांति के उपाय

गर्गजी ने कहा – ब्रह्मन्! जब नदियां, सरोवर या झरने नगर से दूर हट जाते हैं या अत्यन्त समीप चले आते हैं; मलिन, कलुषित, संतप्त तथा फेन के समान जन्तुओं से व्याप्त हो जाते हैं, तेल, दूध, मदिरा और रक्त बहाने लगते हैं अथवा उनका जल विक्षुब्ध हो उठता है, तब छः महीने के भीतर उस देश पर शत्रुपक्ष की सेना से भय प्राप्त होने की सम्भावना होती है। जब किसी प्रकार से जलाशय शब्द करने लगते हैं या जलने लगते हैं तथा लपटें, धुआं एवं धूलि फेंकने लगते हैं, बिना खोदे ही जल निकलने लगता है, जलाशय बड़े-बड़े जन्तुओं से भर जाते हैं और उनमें से संगीत की ध्वनियाँ सुनाई पड़ने लगती हैं, तब प्रजावर्ग के मरण का भय उपस्थित होता है। ऐसे अवसर पर घी, मधु और तेल से जलाशयों का अभिषेक कर वरुण के मंत्रों का जप करना चाहिए और उन्हीं मंत्रों का उच्चारण कर जल में हवन करना चाहिए। तदन्तर ब्राह्मणों को भोजनार्थ मधु तथा घृत मिलाकर श्रेष्ठ अन्न देने चाहिए और जल के महापाप की शांति के लिए श्वेत वस्त्रों से युक्त गोएं और जल रखने के घड़े दान करने चाहिए।

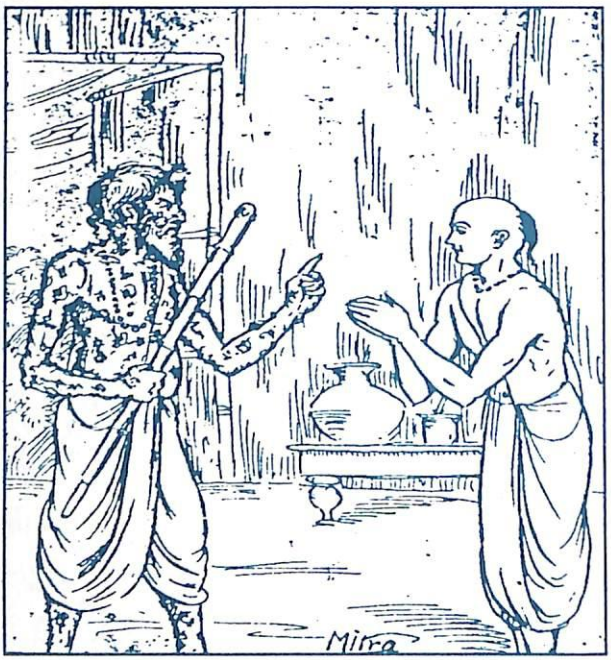

व्रत-अनुष्ठान में जल का माहात्म्य

देवदेव महाभग श्रीवत्सकृतलांछन।
महादेव नमस्तेस्तु नमस्ते विवभावन।
अर्ध्यगृहाण भे देव मुक्तिं मे देहि सर्वदा।

भावार्थ है कि – 'देवदेव! महाभग! श्री वत्स के चिह्नों से युक्त महान् देवता! विश्व को उत्पन्न करने वाले भगवान् नारायण! मेरा अर्घ्य ग्रहण करें और मुझे सदा के लिए मोक्ष प्रदान करें।'

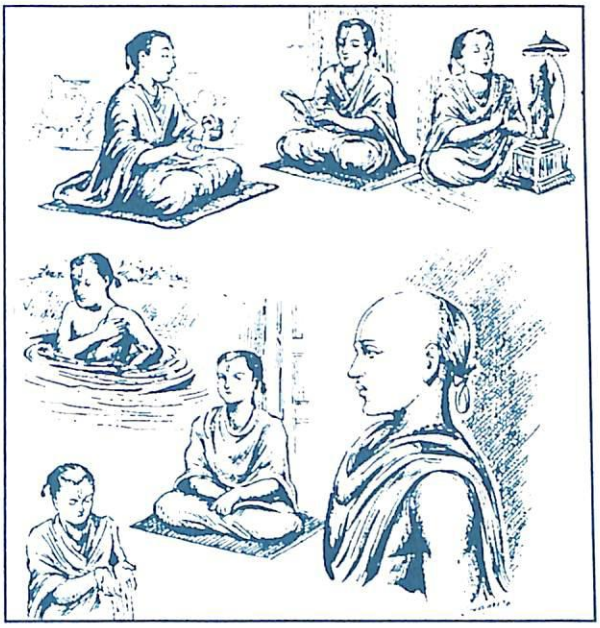

भगवान् विष्णु जल के प्रेमी हैं, उन्हें जल बहुत ही प्रिय है, इसलिए वे जल में शयन करते हैं, अतः गर्मी के मौसम में विशेष रूप से जल में स्थापित करके ही श्रीहरि का पूजन करना चाहिए।

सत्यार्थ प्रकाश- महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रश्न- होम से क्या उपकार होता है ?

उत्तर- सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।

पद्म पुराण :- उत्तर खण्ड

संवत्सरदीप व्रत की विधि और महिमा - नारद जी के पूछने पर महादेव जी ने संवत्सरदीपव्रत 'जल स्नान' के महत्व का वर्णन इस प्रकार बताया - हेमन्त ऋतु के प्रथम ऋतु के प्रथम मास- अगहन में शुभ एकादशी तिथि आने पर ब्रह्म मुहूर्त में उठे और काम-क्रोध से रहित हो, नदी के संगम, तीर्थ, पोखरे या नदी में जाकर स्नान करें। स्नान करने का मन्त्र इस प्रकार है -

स्नातो हं सर्वतीर्थेपु गर्ते पस्रवणेपु च।
नदीपु सर्वतीर्थेपु ततस्नानं देहि मे सदा।

मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों तथा नदियों में स्नान कर चुका। जल! तुम मुझे उन सबमें स्नान करने का फल प्रदान करो।

जयन्ती संज्ञावाली जन्माष्टमी के व्रत तथा विविध प्रकार के दान आदि की महिमा-इन्द्र और बृहस्पतिजी का संवाद –

कृतं दत्तं तपो धीतं यत्किचिंद्धर्मसंस्थितम्।
अर्धगुलस्य सीमाया हरणेन प्रणश्यति।।

गोतीर्थ ग्रारथ्यां च श्मशान् ग्राममेव च।
संपीडय नरकं याति यावदाभूत संप्लवम्।

शुभ कर्म, दान, तप, स्वाध्याय तथा जो कुछ भी धर्म संबंधी कार्य है, वह सब खेत की आधी अंगुली सीमा हर लेने से भी नष्ट हो जाता है। गोतीर्थ 'गौओं के चलने और पानी पीने आदि का स्थान' गांव की सड़क, मरघट तथा गांव को दबा कर मनुष्य प्रलय काल तक नरक में पड़ा रहता है।

जो नया पोखरा बनवाता है, अथवा पुराने को ही खुदवाता है, वह समस्त कुलों का उद्धार करके स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। बावड़ी, कुआं, तडाग और बगीचे पुनः संस्कार 'जीर्णोद्धार' करने पर मोक्षरूप फल प्रदान करते हैं। इन्द्र! जिसके जलाशय में गर्मी की मौसम तक पानी ठहरता है, वह कभी दुर्गम और विषम संकट का सामना नहीं करता। देव श्रेष्ठ! यदि एक दिन भी पानी ठहर जाए तो वह सात पहले और सात पीछे की पीढ़ियों का उद्धार कर देता है।

भाद्रपद मास की 'अजा' और 'पद्मा' एकादशी का माहात्म्य – प्रजा और राजा संवाद में वृतान्त आया है कि मनीषी पुरुषों ने जल को 'नारा' कहा है, वह नारा ही भगवान् का अयन-निवास स्थान है। इसलिए वे नारायण कहलाते हैं। नारायण स्वरूप भगवान् विष्णु सर्वत्र व्यापक रूप में विराजमान हैं। वे ही मेघ स्वरूप होकर वर्षा करते हैं, वर्षा से अन्न पैदा होता है और अन्न से प्रजा जीवन धारण करती है।

भविष्य पुराणः- मध्यम पर्व - पूत कर्म निरूपण-सूतजी एवं ब्राह्मणों का संवाद

सूतजी ने कहा - ब्राह्मणों! युगान्तर में ब्रह्मा ने जिस अन्तर्वेदि और बहिर्वेदि की बात बतलायी है, वह द्वापर और कलियुग के लिए अत्यन्त उत्तम मानी गयी है। जो कर्म ज्ञानसाध्य है, उसे अन्तर्वेदिक कहते हैं। देवता की स्थापना और पूजा बहिर्वेदि पूर्त-कर्म है। वह बहिर्वेदि कर्म दो प्रकार का है - कुआं, पोखरा, तालाब आदि खुदवाना और ब्राह्मणों को संतुष्ट करना तथा गुरुजनों की सेवा।

निष्कामभावपूर्वक किये गये कर्म तथा व्यसनपूर्वक किया गया हरिस्मरणादि श्रेष्ठकर्म अन्तर्वेदि-कर्मों के अन्तर्गत आते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य कर्म बहिर्वेदि कर्म कहलाते हैं।

नवीन तालाब, बावड़ी, कुण्ड और जल पौंसरा आदिका निर्माण कर संस्कार-कार्य के लिये गणेशादि-देव पूजन तथा हवनादि कार्य करने चाहिए। तदनन्तर उसमें वापी, पुष्करिणी नदी आदि का पवित्र जल तथा गंगाजल डालना चाहिये।

नूतन तडाग का निर्माण करने वाला अथवा जीर्ण तडाग का नवीन रूप में निर्माण करने वाला व्यक्ति अपने सम्पूर्ण कुल का उद्धार कर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है। वापी, कूप तालाब, बगीचा तथा जल के निर्गम-स्थान को जो व्यक्ति बार-बार स्वच्छ या संस्कृत करता है, वह मुक्तिरूप उत्तम फल प्राप्त करता है। जहां विप्रों एवं देवताओं का निवास हो, उनके मध्यवर्ती स्थान में वापी, तालाब आदि का निर्माण मानवों को करना चाहिए। नदी के तट और श्मशान के समीप उनका निर्माण न करें। जो मनुष्य वापी, मन्दिर आदि की प्रतिष्ठा नहीं करता उसे अनिष्ट का भय होता है तथा वह पाप का भागी भी होता है। अतः जनसंकुल गांव के समीप बड़े तालाब, मन्दिर, कूप आदि का निर्माण कर उनकी प्रतिष्ठा शास्त्र विधि से करनी चाहिए। उनकी शास्त्रीय विधि से प्रतिष्ठा होने पर उत्तम फल प्राप्त होते हैं। अतएव प्रयत्नपूर्वक मनुष्य न्यायोपार्जित धन से शुभ मुहूर्त में शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक प्रतिष्ठा करें।

जल की महिमा अपरम्पार है। परोपकार या देव कार्य में एक दिन भी किया गया जल का उपयोग मातृकुल, पितृकुल, भार्याकुल तथा आचार्यकुल की अनेक पीढ़ियों को तार देता है। उसका स्वयं का भी उद्धार होता है तथा अपने पितृ-मातृ आदि कुलों को भी वह तार देता है। जल के ऊपर रहने के लिए कभी घर नहीं बनवाना चाहिये। देवताओं के मन्दिर के सामने पुष्करिणी आदि

बनाने चाहिए। पुष्करिणी बनाने वाला अनन्त फल प्राप्त कर ब्रह्मलोक से पुनः नीचे नहीं आता।

भविष्य पुराण :- उत्तर पर्व - जलधेनु-दान के प्रसंग में महर्षि मुदग्ल का आख्यान

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- महाराज! अब मैं जलधेनु-दान की विधि बता रहा हूँ, जिससे देवाधिदेव भगवान विष्णु प्रसन्न होते हैं। उत्तम जल पूर्ण एक कलश स्थापित करे, उसमें पंचरत्न, धानन्य, दूर्वा, पंचपल्लव, कुष्ठसंज्ञक औषधि, खश, जटामांसी, मुरा, प्रियंगु और आंवला छोड़े। फिर उसे दो श्वेत वस्त्रों, यज्ञोपवीत और पुष्पमालाओं से अलंकृत करें। कुश के आसन पर कलश को रख कर उसके आसपास जूता, छाता आदि तथा चारों दिशाओं में चांदी के चार पात्रों में तिल, दही, घृत और मधु भरकर रखें। कलश में सवत्सा धेनु की कल्पना कर उसे गोमय से उपलिप्त कर दें। पूँछ के स्थान पर माला लटका दें। समीप में दाहन पात्र भी रख लें। इसके बाद सब उपचारों से विष्णु की यथाशक्ति पूजा कर उस कलश में जल धेनु की अभिमंत्रणा करें और इस प्रकार कहें -

कवष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या विभावसोः।
सोमशकार्कशक्तिर्या धेनुरूपेण साअस्तु मे।।

'जो गर्भमाता भगवान् विष्णु के वक्षस्थल में लक्ष्मी के रूप में निवास करती है और अग्नि देव की पत्नी स्वाहा तथा चन्द्रमा, सूर्य एवं इन्द्र की शक्ति रूप में प्रतिष्ठित हैं, वे मेरे लिए इस जलरूपी कलश में अधिष्ठिता हों। इस मंत्र से धेनु को प्रतिष्ठित कर वत्स- समन्वित उस जलधेनु का तथा जलशायी भगवान् अच्युत् गोविन्द का भलीभांति पूजन करें। तदन्तर वीतराग और शांतचित्त होकर भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिए उस कलशस्थित जलधेनु का ब्राह्मण को दान कर दें और इस प्रकार कहें -

शेषपर्यकशयनः श्रीमांछा विभूषितः।
जलशायी जगद्योनिःप्रीयतां मम केशवः ।।

'शेषनागरूपी शय्या पर शयन करने वाले, शार्गधेनु से विभूषित जलशायी, जगद्योनि, श्रीसम्पन्न भगवान् केशव! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

दान करने के बाद उस दिन गोव्रत करना चाहिए। इस विधि से जलधेनु का दान करने वाला व्यक्ति सभी सार्वकालिक अतुल शान्ति प्राप्त होती है एवं सभी मनोरथों की सिद्धि हो जाती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

स्कन्द पुराण

वैशाख मास की श्रेष्ठता, उसमें जल दान की महिमा- सूतजी एवं नारद जी का संवाद :

सूत जी कहते हैं- राजा अम्बरीष ने परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र देवर्षि नारद से पुण्यमय वैशाख मास का माहात्म्य इस प्रकार पूछा- 'ब्राह्मण! मैंने आप से सभी महीनों का माहात्म्य सुना। उस समय आप ने यह कहा था कि सभी महीनों में वैशाख मास श्रेष्ठ है। इसलिए यह बताने की कृपा करें कि वैशाख मास क्यों भगवान् विष्णु को प्रिय है और उस समय कौन-कौन से धर्म भगवान् विष्णु को प्रीतिकारक हैं?'

नारद जी ने कहा- वैशाख मास को ब्रह्मा जी ने सब मासों में उत्तम सिद्ध किया है। वह माता की भांति सब जीवों को अभीष्ट वस्तु प्रदान करने वाला है। धर्म, यज्ञ, क्रिया और तपस्या का सार है। सम्पूर्ण देवताओं द्वारा पूजित है। जैसे विद्याओं में वेद विद्या, मंत्रों में प्रणव, वृक्षों में कल्पवृक्ष, धेनुओं में कामधेनु, देवताओं में विष्णु, वर्णों में ब्राह्मण, प्रिय वस्तुओं में प्राण, नदियों में गंगाजी,

तेजों में सूर्य, अस्त्र-शस्त्रों में चक्र, धातुओं में स्वर्ण, वैष्णों में शिव तथा रत्नों में कौस्तुभमणि है, उसी प्रकार धर्म के साधन भूत महीनों में वैशाख मास सबसे उत्तम है। संसार में इसके समान भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने वाला दूसरा कोई मास नहीं है। जो वैशाख मास में सूर्योदय से पहले स्नान करता है, उससे भगवान् विष्णु निरन्तर प्रीति रखते हैं। पाप तभी तक गर्जते हैं, जब तक जीव वैशाख मास में प्रातःकाल जल में स्नान नहीं करता। राजन्! वैशाख के महीने में सब तीर्थ आदि देवता तीर्थ के अतिरिक्त बाहर के जल में भी सदैव स्थित रहते हैं। भगवान् विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों के भीतर तक वहां मौजूद रहते हैं। वैशाख के समान कोई मास नहीं है, सत्य युग के समान कोई युग नहीं है, वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है और गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है।

न माधवससो मासो न कृतेन युगं समम्।
न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थ गंगया समम्।।

जल के समान दान नहीं है, खेती के समान धन नहीं है। उपवास के समान कोई तप नहीं है, दान से बढ़कर कोई सुख नहीं है। दया के समान धर्म नहीं है। धर्म के समान मित्र नहीं है। सत्य के समान यश नहीं, आरोग्य के समान उन्नति नहीं, भगवान् विष्णु से बढ़ कर कोई रक्षक नहीं और वैशाख मास के समान संसार में कोई पवित्र मास नहीं है। ऐसा विद्वान् पुरुषों का मत है। सब दानों से जो पुण्य होता है, और सब तीर्थों में जो फल होता है, उसी को मनुष्य वैशाख मास में केवल जलदान करके प्राप्त कर लेता है। जो जलदान में असमर्थ है, ऐसे ऐश्वर्य की अभिलाषा रखने वाले पुरुष को उचित है कि वह दूसरे को प्रबोध करे, दूसरे को जल दान का महत्व समझावे। वह सब दानों से बढ़कर हितकारी है। जो मनुष्य वैशाख में सड़क पर यात्रियों के लिए प्याऊ लगाता है, वह विष्णु लोक में प्रतिष्ठित होता है। नृपश्रेष्ठ! 'प्रपादन, पौंसला या प्याऊ' देवताओं, पितरों तथा ऋषियों को अत्यन्त प्रीति देने वाला है। जिसने प्याऊ

लगाकर रास्ते में थके-मांदे मनुष्यों को सन्तुष्ट किया है, उसने ब्रह्मा-विष्णु और शिव आदि देवताओं को सन्तुष्ट कर लिया है। राजन्! वैशाख मास में जल की इच्छा रखने वाले को जल, छाया चाहने वाले को छाता और पंखे की इच्छा रखने वाले को पंखा देना चाहिए। राजेन्द्र! जो प्यास से पीड़ित महात्मा पुरुष के लिए शीतल जल प्रदान करता है, वह उतनी ही मात्रा में दस हजार राजसूय यज्ञों का फल पाता है।

विष्णु पुराण-उत्तर खण्ड

वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ में जलस्थ श्री हरि के पूजन का महत्व : महादेव एवं पार्वती महादेव जी ने कहा कि - पार्वती! वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन वैष्णव पुरुष भक्ति, उत्साह और प्रसन्नता के साथ जगदीश्वर भगवान् को जल में पधराकर उनकी पूजा करें अथवा एकादशी तिथि को अत्यन्त हर्ष से भर कर गीत, वाद्य तथा नृत्य के साथ यह पुण्य उत्सव करें। भक्तिपूर्वक श्री हरि की लीला-कथा का गान करते हुए ही यह शुभ उत्सव रचना उचित है। उस समय भगवान से प्रार्थनापूर्वक कहें- 'हे देवेश्वर! इस जल में शयन कीजिये। 'जो लोग वर्षाकाल के आरम्भ में भगवान जनार्दन का जल में शयन कराते हैं, उन्हें कभी नरक की ज्वाला में नहीं तपना पड़ता। देवेश्वर! सोना, चांदी, तांबे अथवा मिट्टी के बर्तन में शीतल और सुगन्धित जल रखकर विद्वान पुरुष उस जल के भीतर श्रीविष्णु को स्थापित करें। गोपाल या श्रीराम नामक मूर्ति की स्थापना करें अथवा शालग्रामशिला को ही स्थापित करें या और ही कोई प्रतिमा जल में रखें। उससे होने वाले पुण्य का अन्त नहीं है। देवि! इस पृथ्वी पर जब तक पर्वत लोक और सूर्य की किरणें विद्यमान हैं, तब तक उसके कुल में कोई नरकगामी नहीं होता। अतः ज्येष्ठ मास में श्री हरि को जल में पधरा कर उनकी पूजा करनी चाहिए। इससे मनुष्य प्रलय काल तक निष्पाप बना रहता है। ज्येष्ठ और आषाढ़ के समय तुलसीदल से वासित शीतल जल में भगवान्

धरणीधर की पूजा करें। जो लोग ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में नाना प्रकार के पुष्पों से जल में स्थित श्रीकेशव की पूजा करते हैं, ये यम यातना से छुटकारा पा जाते हैं। भगवान् विष्णु जल के प्रेमी हैं, उन्हें जल.बहुत ही प्रिय है, इसलिए वे जल में शयन करते हैं, अतः गर्मी के मौसम में विशेष रूप से जल में स्थापित करके ही श्रीहरिका पूजन करना चाहिए। जो शालग्रामशिला को जल में विराजमान करके परम भक्ति के साथ उसकी पूजा करता है, सूर्य के मिथुन और कर्क राशि पर स्थित रहने के समय जिसने भक्तिपूर्वक जल में श्रीहरि की पूजा की है, विशेषतः द्वादशी तिथि को जिसने जलशायी विष्णु का अर्चन किया है, उसने मानो कोटिशत यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया है। जो वैशाख मास में भगवान् माधव को जलपात्र में स्थापित करके उनका पूजन करते हैं, वे इस पृथ्वी पर मनुष्य नहीं देवता हैं।

जो द्वादशी की रात को गन्ध आदि डालकर उसमें भगवान् गरुडध्वज की स्थापना और पूजा करता है, वह मोक्ष का भागी होता है। जो श्रद्धारहित, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और तर्क में ही स्थित रहने वाले हैं, ये पांच व्यक्ति पूजा के फल के भागी नहीं होते।

देवदेव महाभग श्रीवत्सकृतलांछन।
महादेव नमस्तेस्तु नमस्ते विवभावन॥

अर्ध्यगृहाया भे देव मुक्तिं मे देहि सर्वदा। भावार्थ है कि - 'देवदेव! महाभग! श्री वत्स के चिह्नों से युक्त महान् देवता! विश्व को उत्पन्न करने वाले भगवान् नारायण! मेरा अर्घ्य ग्रहण करें और मुझे सदा के लिए मोक्ष प्रदान करें।

पद्म पुराण-सृष्टि खण्ड

जो मनुष्य एक वर्ष तक केवल एक ही अन्न का भोजन और भक्ष्य पदार्थों के साथ **जल का घड़ा** दान करता है वह कल्प पर्यन्त शिवलोक में निवास करता है। इसे **प्राम्रिव्रत** कहते हैं।

- जो मनुष्य जल में खड़े होकर तिल की पीठी के बने हुए हाथी को रत्नों से विभूषित करके ब्राह्मणों को दान देते हैं, उन्हें इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है।

- पुष्कर प्राप्ति के लिए मंत्र द्वारा पुष्कर का आह्वान **'आपो हि ष्ठा मयो'** इत्यादि तीन ऋचाओं का जप करने से यह तीर्थ तुम्हारे समीप आ जायेगा और अघमर्पण-मन्त्र का तप करने से पूर्ण फलदायक होगा।

- प्रलयकाल में रसनेन्द्रिय, उसका विषय रस और स्नेह आदि जल के गुण जल में ही लीन हो जाते हैं।

वत्रासुर की आत्मा के उद्धार के लिए ब्रह्मा जी ने जल से चौथाई भाग वत्रासुर के दोषों को लेने के लिए कहा।

जल ने कहा - लोकेश्वर! आप हमें जो आज्ञा देते हैं, वही होगा, परन्तु हमारे उद्धार के उपाय का भी विचार कीजिए।

ब्रह्मा जी बोले- जो मनुष्य अज्ञान से मोहित होकर तुम्हारे भीतर थूक या मूल-मूत्र डालेगा, उसी के भीतर यह शीघ्र चली जायेगी और वहीं निवास करेगी। इससे तुम्हें छुटकारा मिल जायेगा।

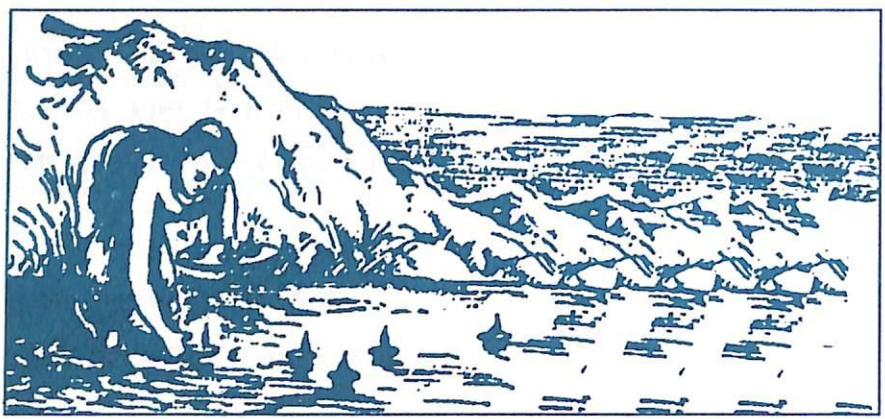

जल और कर्मकाण्ड

हमारे सामाजिक जीवन में कर्मकाण्ड का अपना महत्व है। यह हमारी जीवन शैली का एक अंग है। जो जीवन की दैनिक दिनचर्या के रूप में हमारे समाज में समाहित है। कर्मकाण्ड को तीन रूपों में देख सकते हैं। स्नान, तर्पण और श्राद्ध जो बिना जल नहीं हो सकते। इनके अलग-अलग नियम और विधियां होती हैं। जिन्हें नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से सीख कर जीवन जीती आई है। फिर भी हमारे ऋषि-मुनियों ने वेद-पुराणों की रचना करते समय विभिन्न विधियों में जल स्नान और तर्पण का महत्व व माहात्म्य का विस्तृत उल्लेख किया है।

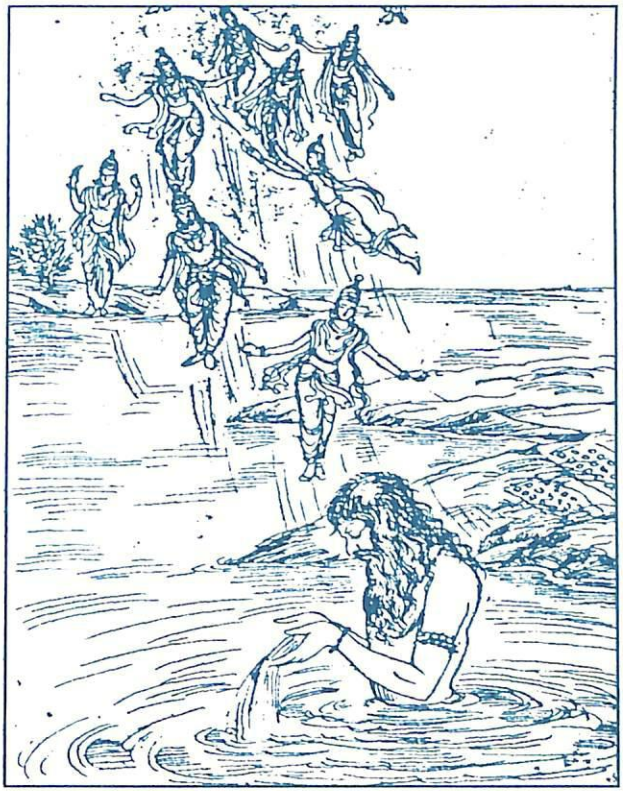

श्रद्धायोपाहत् प्रष्टठं भक्तेन मम ब्रार्यपि।
सूर्यप्यभक्तोपहतं न मे तोपाया कलते।।

भावार्थ है कि - 'श्रद्धापूर्वक यदि जल भी अर्पण किया जाये तो वह मुझे अत्यन्त प्रिय है, श्रद्धारहित अमूल्य वस्तु भी अर्पण की हुई मेरे लिए सन्तोषप्रद नहीं हो सकती।

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्।
अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम्।।

भावार्थ है कि - 'हे देवदेवेश्वर, हे अनन्त आनन्द से परिपूर्ण, आपके लिए मैं सबको तृप्ति देने वाला यह उत्तम जल समर्पित करता हूँ, कृपया इसे स्वीकार करें।'

परमानन्द बोधब्धिनिमग्ननिजलूर्तये।
सागोपागमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते।।

भावार्थ है कि - 'हे ईश, आप अपने परमानन्द स्वरूप समुद्र में स्वयं निमग्न है, आपके लिये सांगोपांग स्नानार्थ जल मैं समर्पित करता हूँ।'

जल और श्राद्ध :- जल स्नान के वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर टपकता है उससे वृक्षयोनि में पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहाने पर अपने शरीर से जो जल के कण पृथ्वी पर गिरते हैं, उनसे उन पितरों की तृप्ति होती है, जो देवभाव को प्राप्त हुए हैं। पिण्डों के उठाने पर जो जल के कण पृथ्वी पर गिरते हैं, उनसे पशु पक्षी की योनि में पड़े हुए पितरों की तृप्ति होती है।

स्नान का महत्व- मनुष्य जीवन में भोजन से भी ऊँचा स्थान है स्नान का। यों तो भोजन भी स्वास्थ्य का एक अंग ही है- यदि साधन के रूप में उसका अनुष्ठान हो, परन्तु भोजन में तो कभी-कभी व्यवधान भी डालना पड़ता है, लेकिन स्वस्थ पुरुष के लिये ऐसा एक दिन भी नहीं है जिसमें स्नान का निषेध हो। स्नान के लिये सर्वोत्तम स्थान समुद्र और गंगा, नर्मदा, गोदावरी आदि

महानदियाँ हैं, उनके अभाव में छोटी-छोटी नदियाँ, प्राकृतिक स्रोत, स्वच्छ जल के ताल, सरोवर, बावड़ी और कुएँ हैं। जिस जल की पवित्रता सन्दिग्ध हो, तो उसमें स्नान नहीं करना चाहिए।

स्नान मंत्र

पंचामृतेन सुस्नातस्तथा गन्धोदकेन च।
ग्रगादीनां च तोयेन स्नातो नन्तः प्रसीदतु।।

पंचामृत और चन्दनयुक्त जल से भलीभांति नहाकर गंगा आदि नदियों के जल से स्नान किये हुए भगवान् अनन्त मुझ पर प्रसन्न हों।

स्नातो हं सर्वतीर्थेपु गर्ते प्रस्रवणेपु च।
नदीपु सर्वतीर्थेपु तत्स्नानं देहि मे सदा।।

'मैं सम्पूर्ण तीर्थों, कुण्डों, झरनों तथा नदियों में स्नान कर चुका! जल! तुम मुझे उन सबमें स्नान करने का फल प्रदान करो।'

पद्म पुराण - स्नान के प्रकार

स्नान के प्रकार - पुराणों में स्नान दस प्रकार के माने गये हैं जो निम्नवत् हैं – नारद जी द्वारा अधम ब्राह्मणों के विषय में कुछ पूछे जाने पर ब्रह्मा जी ने बताया कि महर्षियों के पांच स्नान बताये हैं- आग्नेय, वारुण, ब्रह्म, वायव्य और दिव्य। सम्पूर्ण शरीर में भस्म लगाना आग्नेय स्नान है, शरीर पर हवा से उड़कर जो गौ के चरणों की धूलि पड़ी है, उसे वायव्य स्नान माना गया है, जिसमें जल से जो स्नान किया जाता है, उसे वरुण स्नान कहते हैं, 'आपोः हिष्ठा इत्यादि ऋचाओं से जो अपने ऊपर अभिषेक किया जाता है, वह ब्रह्म स्नान है। धूप रहते हुए आकाश से जल की वर्षा होती है, उससे नहाने को दिव्य स्नान कहते हैं। उपरोक्त वस्तुओं के द्वारा मंत्र पाठपूर्वक स्नान करने से तीर्थ-स्नान का फल प्राप्त होता है।

तुलसी के पत्ते से लगा हुआ जल, शालग्राम-शिला को नहलाया हुआ जल, गौओं के सींग से स्पर्श कराया हुआ जल, ब्राह्मण का चरणोदक तथा मुख्य गुरुजनों का चरणोदक – ये पवित्र से भी पवित्र माने गये हैं। ऐसा स्मृतियों का कथन है। 'इन पांच तरह के जलों से मस्तक पर अभिषेक करना पुनः पांच प्रकार का स्नान है - इस तरह दस प्रकार के स्नान माना गया है। त्याग, तीर्थ-स्नान, यज्ञ और होम आदि के द्वारा जो फल मिलता है, वही फल धीर पुरुष उपर्युक्त स्नानों से प्राप्त कर लेता है।

पद्म पुराण - स्नान और तर्पण विधियाँ

व्रत, स्नान और तर्पणदान की प्रशंसा में पुलत्स्य जी कहते हैं- राजन! ज्येष्ठ पुष्कर में गौ, मध्यम पुष्कर में भूमि और कनिष्ठ पुष्कर में स्वर्ण देना चाहिए। यहीं वहां के लिए दक्षिणा है। प्रथम पुष्कर के देवता ब्रह्मा जी, दूसरे के भगवान् श्रीविष्णु तथा तीसरे के श्री रुद्र हैं। जल का घड़ा दान करने वाला कल्प पर्यन्त शिव लोक में निवास करता है इसे 'प्राप्तिव्रत' कहते हैं।

पुलस्त्य जी ने स्नान के विषय में बताया कि स्नान के बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न मन की ही शुद्धि होती है, अतः मन की शुद्धि के लिए सबसे पहले स्नान का विधान है। घर में रखे हुए अथवा तुरंत के निकाले हुए जल से स्नान करना चाहिए। किसी जलाशय या नदी का स्नान सुलभ हो तो और भी उत्तम है।

मन्त्रवेता विद्वान् पुरुष को मूलमंत्र के द्वारा तीर्थ की कल्पना कर लेनी चाहिए।

'ॐ नमो नारायणाय' - यह मूलमंत्र बताया गया है। पहले हाथ में कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करें तथा मन और इन्द्रियों को संयम में रखते हुए बाहर-भीतर से पवित्र रहें। फिर चार हाथ का चौकोर मण्डल बना कर उसमें

निम्नांकित वाक्यों द्वारा भगवती गंगा का आह्वान करें। - गंगे! तुम भगवान श्री विष्णु के चरणों में प्रकट हुई हो, श्री विष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिए तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवी! तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक समस्त पापों से मेरी रक्षा करो! स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। माता जाह्नवी! वे सभी तीर्थ तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। देव लोक में तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके सिवा दक्षा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, महादेवी, लोक प्रसादिनी, क्षेमा जाह्नवी, शान्ता और शांति प्रदायिनी आदि तुम्हारे अनेकों नाम हैं। जहां स्नान के समय इन पवित्र नामों का कीर्तन होता है, वहां त्रिपथगामिनी भगवती गंगा उपस्थित हो जाती है।

तर्पण- सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापति का तर्पण करें। तत्पश्चात् देवता, यक्ष नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराएं, क्रूर, सर्प, गरुड़ पक्षी, वृक्ष, जम्भक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्म परायण जीवों को तृप्त करने के लिए मैं जल देता हूँ, यह कह कर सबको जलांजलि दें।

मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषि पुत्रों का भक्तिपूर्वक तर्पण करें।

सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पंचशिख- ये मेरे दिये जल से सदा तृप्त हों। 'ऐसी भावना करके जल दें।' ''जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्म में मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये जल से तृप्त हों। उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जल की अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति लाभ करें।'' ऐसा कहकर उनके उद्देश्य से जल गिरायें।

पद्म पुराण - तर्पण तथा शिष्टाचार का वर्णन

नारद जी के पूछे जाने पर कि किस आचरण से ब्राह्मण के ब्रह्मतेज की वृद्धि होती है? ब्रह्मा जी ने स्नान को भी ब्राह्मण के ब्रह्मतेज की वृद्धि में एक

उपाय बतलाया है- प्रतिदिन स्नान की विधि का इस प्रकार अपने ज्ञान के अनुसार यत्नपूर्वक स्नान- विधि का पालन करना चाहिए। पहले शरीर को जल से भिगोकर फिर उसमें मिट्टी लगायें। मस्तक, ललाट, नासिका, हृदय, भौंह, बाहु, पसली, नाभि, घुटने और दोनों पैरों में मृतिका लगाना उचित है। मनुष्य को शुद्धि की इच्छा से शौच होकर एक बार लिंग में, तीन बार गुदा में, दस बार बायें हाथ में तथा सात बार दोनों हाथों में मिट्टी लगानी चाहिए।

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम।।

भावार्थ :- 'घोड़े' रथ और भगवान् श्री विष्णु द्वारा आक्रान्त होने वाली मृत्तिकामयी वसुन्धरे! मेरे द्वारा जो दुष्कर्म या पाप हुए हों उन्हें तुम हर लो।' - इस मंत्र के साथ जो अपने शरीर से मिट्टी का लेप करता है, उसके सब पापों का क्षय होता है तथा वह मनुष्य सर्वथा शुद्ध हो जाता है। तदनन्तर विद्वान पुरुष नद, नदी, पोखरा, सरोवर या कुएं पर जाकर वेदमंत्रों के उच्चारण पूर्वक स्नान करें। उसे नदी आदि की जल-राशि में प्रवेश करके स्नान करना चाहिए और कुएं पर नहाना हो तो किनारे रहकर घड़े से स्नान करना उचित है। मनुष्य को अपने समस्त पापों का नाश करने के लिए विधिवत् स्नान करना चाहिए। सवेरे का स्नान महान् पुण्यदायक और सब पापों का नाश करने वाला है। जो ब्राह्मण प्रातःकाल स्नान करता है, वह विष्णु लोक में प्रतिष्ठित होता है। **प्रातः संध्या के समय चार दण्ड तक जल अमृत के समान रहता है, वह पितरों को सुधा के समान तृप्तिदायी होता है। उसके बाद दो घड़ी तक अर्थात् कुल एक पहर तक जल मधु के समान रहता है, वह भी पितरों की प्रसन्नता बढ़ाने वाला होता है। तत्पश्चात् डेढ़ पहर तक का जल दूध के समान माना गया है। उसके बाद का चार दण्ड तक का जल दुग्ध-मिश्रित सा रहता है।**

नारद जी के जल के देवता के विषय में पूछने पर ब्रह्मा जी ने कहा- बेटा! सम्पूर्ण लोकों में भगवान् श्री विष्णु ही जल के देवता माने गये हैं, अतः जो जल से स्नान करके पवित्र होता है, उसका भगवान् विष्णु कल्याण करते हैं। एक घूँट जल पीकर भी मनुष्य पवित्र हो जाता है। विशेष बात यह है कि कुश के संसर्ग से जल अमृत से भी बढ़ कर होता है। कुश सम्पूर्ण देवताओं का निवास स्थान है, पूर्व काल में मैंने ही उसे उत्पन्न किया था। कुश के मूल में स्वयं मैं **'ब्रह्मा'**, उसके मध्य भाग में श्री विष्णु और अग्र भाग में भगवान् श्री शंकर विराजमान हैं, इन तीनों के द्वारा कुश की प्रतिष्ठा है।

तिल के सम्पर्क से जल अमृत से भी अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। जो प्रतिदिन स्नान करके तिलमिश्रित जल से पितरों का तर्पण करता है। वह अपने दोनों कुलों का उद्धार करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

नारद पुराण- जल का तर्पण

पितरों के तर्पण के लिए नाभि के बराबर जल में खड़ा होकर मन-ही-मन यह चिन्तन करें कि मेरे पितर आवें और यह जलांजलि ग्रहण करें। दोनों हाथों को संयुक्त करके जल से पूर्ण करें और गोश्रृगमात्र जल उठाकर उसे पुनः जल में डाल दें। **जल में दक्षिण की ओर मुँह करके खड़ा हो आकाश में जल गिराना चाहिए, क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दिशा दक्षिण है। देवता आपः 'जल' कहे गये हैं और पितरों का नाम भी आपः है, अतः पितरों के हित की इच्छा रखने वाला पुरुष उनके लिए जल में ही जल दे।** जो दिन में सूर्य की किरणों से तपता है, रात में नक्षत्रों के तेज तथा वायु का स्पर्श पाता है और दोनों संध्याओं के समय भी उक्त दोनों वस्तुओं का सम्पर्क लाभ करता है, वह जल सदा पवित्र माना गया है। जो अपने स्वाभाविक रूप में हो, जिसमें किसी अपवित्र वस्तु का मेल न हुआ हो, वह जल सदा पवित्र है। ऐसा जल किसी पात्र में हो या पृथ्वी पर, सदा शुद्ध माना गया है। देवताओं

और पितरों के लिए जल में ही जलांजलि दें और जो बिना संस्कार के ही मरे हैं, उनके लिए विद्वान पुरुष भूमि पर जलांजलि दें। श्राद्ध और होम के समय एक हाथ से पिण्ड एवं आहुति दें, किन्तु तर्पण में दोनों हाथों से जल देना चाहिए। यह शास्त्रों द्वारा निश्चित धर्म है।

नारद पुराण

श्वेतमाधव, मत्स्यमाधव, कल्पवृक्ष और अष्टाक्षर - मन्त्र, स्नान तर्पण आदि की महिमा- पुरोहित वसु कहते हैं कि - भगवान् नारायण ने अपनी प्रकृति और उपस्थिति का उपदेश दिया। जिनकी स्तुति विभिन्न नामों से जगत् में होती है; भगवान् नारायण भूत, वर्तमान, भविष्य जो कुछ भी जीव नामक तत्व है, जो स्थूल, सूक्ष्म तथा दोनों से विलक्षण है, वह सब नारायणस्वरूप है। मोहिनी! मैं नारायण से बढ़कर यहां कुछ भी नहीं देखता। यह दृश्य-अदृश्य चर-अचर सब उन्हीं के द्वारा व्याप्त है। जल भगवान् विष्णु का घर है और विष्णु ही जल के स्वामी हैं, अतः जल में सर्वदा पापहारी नारायण का स्मरण करना चाहिए। विशेषतः स्नान के समय जल में उपस्थित हो पवित्र भाव से भगवान् नारायण का स्मरण एवं ध्यान करें। फिर विधिपूर्वक स्नान करना चाहिए। जिसके देवता जल हैं, वैदिक मंत्रों से अभिषेक और मार्जन करके जल में डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण मंत्र का जप करें। जैसे अश्वमेध-यज्ञ सब पापों को दूर करने वाला है, वैसे ही अघमर्षण-सूक्त सब पापों का नाशक है। स्नान के पश्चात् जल से निकलकर दो निर्मल वस्त्र धारण करें। फिर प्राणायाम, आचमन एवं संध्योपासना करके ऊपर की ओर फूल और जल की अंजलि दें, सूर्योपस्थान करें। उस समय अपनी दोनों भुजाएं ऊपर की ओर उठाये रखें और सूर्यदेवता सम्बन्धी मंत्रों का भी एकाग्रचित्त से खड़े होकर जप करें। फिर सूर्य की प्रदक्षिणा और उन्हें नमस्कार करके पूर्वाभिमुख बैठकर स्वाध्याय करें। उसके बाद देवता और ऋषियों का तर्पण करके दिव्य मनुष्यों

और पितरों का भी तर्पण करें। मंत्रवेत्ता पुरुष को चाहिए कि चित्त को एकाग्र करके तिलमिश्रित जल के द्वारा नाम गोत्रोच्चारणपूर्वक पितरों की विधिवत् तृप्ति करें। श्राद्ध में और हवन काल में एक हाथ से सब वस्तुएं अर्पित करें, परन्तु तर्पण में दोनों हाथों का उपयोग करना चाहिए। यही सनातन विधि है। बायें और दायें हाथ की सम्मिलित अंजलि से नाम और गौत्र के उच्चारणपूर्वक 'तृप्यताम्' कहें और मौन भाव से जल दें।

श्राद्धे हवनकाले च पाणिनैकेन निंवेत्।
तर्पणे तूभयं कुर्यादेष एवं विधिः सदा।।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
तृप्यतामिति सिंचेतु नामगोत्रेण वाग्यतः।।

यदि दाता जल में स्थित होकर पृथ्वी पर जल दे अथवा पृथ्वी पर खड़ा होकर जल में तर्पण का जल डाले तो वह पितरों तक नहीं पहुंचता है। जो जल पृथ्वी पर नहीं दिया जाता वह पितरों को प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मा जी ने पितरों के लिए अक्षय स्थान के रूप में पृथ्वी ही दी है। अतः पितरों की प्राप्ति चाहने वाले मनुष्य को पृथ्वी पर ही जल देना चाहिए। पितर भूमि पर ही उत्पन्न हुए, भूमि पर ही रहे और भूमि में ही उनके शरीर का लय हुआ, अतः भूमि पर ही उनके लिए जल देना चाहिए। अग्रभाग सहित कुशों को बिछा कर उस पर मंत्रों द्वारा देवताओं और पितरों का आह्वान करना चाहिए। पूर्वाग्र कुशों पर देवताओं का और दक्षिणाग्र कुशों पर पितरों का आह्वान करना उचित है।

भगवान् नारायण के पूजन में स्नान मंत्र-

त्वमापः पृथिवी चैव ज्योतिस्त्वं वायुरेव च।
लोकेश वृतिमात्रेण वाणि स्नापयाम्यहम् ओम नमो नारायणाय नमः।।

भावार्थ - 'लोकेश्वर! आप ही जल, पृथ्वी तथा अग्नि और वायु रूप हैं। मैं जीवनरूप जल के द्वारा आपको स्नान करता हूँ। सच्चिदानन्द स्वरूप श्री नारायण को नमस्कार है।'

श्रीनरहरिपुराण, अध्याय 58 से – स्नान और तर्पण विधि

श्री हरीत मुनि कहते हैं कि - अब मैं आप को स्नान विधि बतलाता हूँ जो समस्त पापों को नष्ट करने वाली है। उस विधि से मनुष्य तत्काल पापों से मुक्त हो जाता है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि स्नान के लिए कुश और तिलों के साथ-साथ शुद्ध मिट्टी ले तथा प्रसन्नचित होकर शुद्ध और मनोहर नदी के तट पर जाये। नदी के होते हुए छोटे जलाशयों में स्नान न करें। वहां पवित्र स्थान पर उसे छिड़ककर कुश और मृतिका आदि रख दें। फिर विद्वान पुरुष मिट्टी और जल से अपने शरीर को यत्नपूर्वक लिप्त करके शुद्ध स्नान के द्वारा उसे धोकर पुनः आचमन करें। तदन्तर स्वच्छ जल में प्रवेश करके जलेश वरुण को नमस्कार करें। फिर मन-ही-मन भगवान् विष्णु का स्मरण करते हुए जहां कुछ अधिक जल हो, वहां डुबकी लगायें। इसके बाद स्नान समाप्त कर, मंत्रपाठपूर्वक आचमन करके, वरुण संबंधी पवमान-मंत्रों द्वारा वरुण देव का अभिषेक करें। फिर कुश के अग्रभाग पर स्थित जल से अपना यत्नपूर्वक मार्जन करें और **'इदं विष्णुर्विचक्रमे'** इस मंत्र का पाठ करते हुए अपने शरीर के तीन भागों में क्रमशः मृतिका का लेप करें। तत्पश्चात् भगवान् नारायण का स्मरण करते हुए जल में प्रवेश करें। जल के भीतर भली प्रकार डुबकी लगा कर तीन बार अघमर्षण पाठ करें। इस प्रकार स्नान करके कुश और तिलों द्वारा देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करें। इसके बाद समाहितचित हो, जल से बाहर निकल, तट पर आकर धुले हुए दो श्वेत वस्त्रों को धारण करें। इस प्रकार धोती और उत्तरीय धारण कर अपने केशों को न फटकारें। अत्यधिक लाल और नीले वस्त्र धारण करना भी उचित नहीं माना गया है। विद्वान पुरुषों को चाहिए कि जिस वस्त्र में

मल और दाग लगा हो, अथवा किनारी न हो, उसका ही त्याग करें। इसके पश्चात् विज्ञ पुरुष मिट्टी और जल से अपने चरणों को धोये। फिर खूब देख-भालकर शुद्ध जल से तीन बार आचमन करें। दो बार जल लेकर मुँह धोये। पैर और सिर पर जल छिड़के। फिर तीन बार आचमन करके क्रमशः अंगों का स्पर्श करें। अंगूठे और तर्जनी से नासिका का स्पर्श करें। इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण शुद्ध हृदय हो, हाथ में कुश ले पूर्व की ओर मुख करके एकाग्रपूर्वक कुशासन पर बैठ जाये और आलस्य को त्याग कर शक्ति स्त्रोक्त विधि से तीन बार प्राणायाम करें।

भविष्य पुराण- उत्तर पर्व- स्नान एवं तर्पण विधियाँ

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा - राजन्! स्नान के बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न भाव की ही शुद्धि होती है, अतः शरीर की शुद्धि के लिए सबसे पहले स्नान करने का विधान है। घर में रखे हुए अथवा तुरन्त के निकाले हुए जल से स्नान करना चाहिए। किसी जलाशय या नदी का स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है' मंत्रवेत्ता विद्वान् पुरुष को मूल मंत्र के द्वारा तीर्थ की कल्पना कर लेनी चाहिए। 'ओम नमो नारायणाय' - यह मूल मंत्र है। पहले हाथ में कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करें तथा मन और इन्द्रियों को संयम में रखते हुए बाहर-भीतर से पवित्र रहें। फिर चार हाथ का चोकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्नांकित मंत्रों द्वारा भगवती गंगा का आह्वान करें - 'गंगे! तुम भगवान श्री विष्णु के चरणों से प्रकट हुई हो, श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसलिए तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवी! तुम जन्म से लेकर मृत्यु तक मेरे द्वारा किये गये समस्त पापों से मेरा त्राण करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, इसे वायु देवता ने गिनकर कहा है। माता जाह्नवि! वे सब के सब तीर्थ तुम्हारे जल में स्थित हैं। देवलोक में तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है।

इनके अतिरिक्त क्षमा, पृथ्वी, आकाशगंगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरा, सुप्रसन्ना, लोक-प्रसादिनी, क्षेम्या, जाह्नवी, शान्ता और शान्ति प्रदायिनी आदि भी तुम्हारे अनेकों नाम हैं। 'जहाँ स्नान के समय इन पवित्र नामों का कीर्तन होता है, वहां त्रिपथ गामिनी भगवती गंगा उपस्थित हो जाती है।

सात बार उपर्युक्त नामों का जप करके सम्पुट के आकार में दोनों को जोड़कर उनमें जल लें। तीन, चार, पाँच या सात बार उसे अपने मस्तक पर डालें, फिर विधिपूर्वक मृतिका को अभिमंत्रित कर अपने अंगों में लगायें। अभिमन्त्रित करने का मंत्र इस प्रकार है :

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मुक्ति के हर में सर्व यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानामसुधारिणि सुव्रते॥

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्री विष्णु ने भी वामन रूप में तुम्हें एक पैर से नापा था। मृतिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, उन सबको दूर कर दो। देवी! भगवान् श्री विष्णु ने सैकड़ों भुजाओं वाले वराह का रूप धारण करके तुम्हें जल से बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकों के समस्त प्राणियों में प्राण संचार करने वाली हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार।

इस प्रकार मृत्तिका लगाकर पुनः स्नान करे, फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चद्दर धारण कर त्रिलोकी को तृप्त करने के लिए तर्पण करें। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापति का तर्पण करें। तत्पश्चात् देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराओं, क्रूर सर्प, गरुड़ पक्षी, वृक्ष, जम्भक आदि असुर विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवों को तृप्त करने के लिए मैं जल देता हूँ- यह

कहकर उन सब को जलांजलि दें। देवताओं को तर्पण करते समय यज्ञोपवीत को बायें कन्धे पर डाले रहें। तत्पश्चात् उसे गले में माला की भांति कर लें और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषि पुत्रों का भक्तिपूर्वक तर्पण करें। 'सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पंचशिख- ये सभी मेरे दिये जल से सदा तृप्त हों। ऐसी भावना करें, जल दें। इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, मृगु, नारद तथा सम्पूर्ण, देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियों का अक्षत् सहित जल के द्वारा तर्पण करें। इसके बाद यज्ञोपवीत को दायें कंधे पर रख कर बायें घुटने को पृथ्वी पर टेक कर बैठें, फिर् अग्निष्वात, बर्हिपद्, हविष्मान्, उष्मप, सुकाली, भैम, सोमप तथा आज्यप-संज्ञक पितरों का तिल और चन्दनयुक्त जल से भक्तिपूर्वक तर्पण करें। इसी प्रकार हाथों में कुश लेकर पवित्र भाव से परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदि का नाम गोत्र का नाम उच्चारण करते हुए तर्पण करें। इस क्रम से विधि और भक्ति के साथ सबका तर्पण करके निम्नांकित मंत्र का उच्चारण करें।

येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिला यान्तु यश्चास्मताऽभिवांछति॥

जो लोग मेरे बान्धव न हों, मेरे बान्धव हों तथा दूसरे जन्म में मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जल से तृप्त हों। उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जल की अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति-लाभ करें। ऐसा कहकर उनके उद्देश्य से जल गिरायें।

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन कर अपने आगे पुष्प और अक्षतों से कमल की आकृति बनायें। फिर यत्नपूर्वक सूर्यदेव के नामों का उच्चारण करते हुए अक्षत् पुष्प और रक्त चन्दन मिश्रित जल से आर्घ्य दान का मंत्र इस प्रकार है :-

नमस्ते विश्वरूपायं नमस्ते विष्णु सखाय वै।
सहस्त्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे।।

नमस्ते सर्ववपुषे नमस्ते स्वशक्तये।
जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित।।

नमस्ते सर्वलोकेश सर्वासुरनमस्कृत।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सम्यग्जानसि सर्वदा।।

सत्यदेव नमस्तेऽस्तु सर्वदेव नमोऽस्तु ते।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते।।

भावार्थ है कि - 'हे भगवान् सूर्य! आप विश्वरूप और भगवान् विष्णु के सखा हैं, इन दोनों रूपों में आपको नमस्कार है। आप सहस्त्रों किरणों से सुशोभित और सबके तेज रूप हैं, आपको सदा नमस्कार है। सर्वशक्तिमान् भगवान्! सर्वरूपधारी आप परमेश्वर को बार-बार नमस्कार है। दिव्य चन्दन से भूषित और संसार के स्वामी भगवान्! आपको नमस्कार है। कुण्डल और अंगद आदि आभूषण धारण करने वाले पद्मभान! आपको नमस्कार है। भगवन्! आप सम्पूर्ण लोकों के ईश और सभी देवों के द्वारा वन्दित हैं, आपको मेरा प्रणाम है। आप सदा सब पाप-पुण्य को भलीभांति जानते हैं। सत्यदेव! आपको नमस्कार है। सत्यदेव! आपको नमस्कार है। दिवाकर! आपको नमस्कार है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।

इस प्रकार सूर्यदेव को नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करें। फिर द्विज, गौ तथा सुवर्ण का स्पर्श कर अपने घर जायें और वहां भगवान् की प्रतिमा का पूजन करें।

विष्णु पुराण- विभिन्न आश्रमों में दैनिक जल संबंधी नियम

और्व ने कहा कि ब्रह्मचारी को आश्रमों में जल में प्रथम आचार्य के स्नान कर चुकने के बाद स्वयं स्नान करें तथा प्रतिदिन प्रातःकाल गुरुजी के लिए समिधा, जल, कुश और पुष्पादि लाकर जुटा दें।

गृहस्थ जीवन में मनुष्य को जल तथा जलाशय के तट पर मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए, पैर धोया और जूठा जल अपने घर के आंगन में न डालें, शोच शुद्धि के जल के भीतर की मिट्टी न लें, गन्ध और फेन रहित स्वच्छ जल से आचमन करें। पैर धोकर तीन बार कुल्ला करें और दो बार मुख धोवें। तत्पश्चात् जल लेकर शिरोदेश में स्थित इन्द्रियरन्ध्र, मूर्द्धा, बाहु, नाभि हृदय को स्पर्श करें। फिर भली प्रकार स्नान करने के अनन्तर केश संवारे और दर्पण, अंजन तथा दूर्वा आदि मांगलिक द्रव्यों का यथाविधि व्यवहार करें।

नित्यकर्मों के सम्पादन के लिए नदी, नद, तडाग, देवालयों की बावड़ी और पर्वतीय झरने में स्नान करना चाहिए। कुएं से जल खींचकर लाये हुए जल से घर में ही नहा लें। स्नान के अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण कर देवता, ऋषिगण और पितृगण का उन्हीं तीर्थों से तर्पण करें। देवता और ऋषियों के तर्पण के लिए तीन-तीन बार तथा प्रजापति के लिए एक बार जल छोड़ें। हे पृथ्वीपते ! पितृगण और पितामहों की प्रसन्नता के लिए तीन बार जल छोड़ें तथा इसी प्रकार प्रपितामहों को भी सन्तुष्ट करें एवं मातामह 'नाना' और उनके पिता तथा उनके पिताओं को भी सावधानी पूर्वक पितृ-तीर्थ से जलदान करें।

काम्य तर्पण का वर्णन :- यह जल माताओं के लिए हो, यह प्रमाता के लिये हो, यह वृद्धाप्रमाता के लिए हो, यह गुरु पत्नी को, यह गुरु को, यह मामा को, यह प्रिय मित्र को तथा यह राजा को प्राप्त हो- हे राजन्! यह जपता हुआ समस्त भूतों के हित के लिए देवादितर्पण करके अपनी इच्छानुसार अभिलाषित संबंधी के लिये जलदान करें।

देवादि तर्पण के समय इस प्रकार कहें - देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कुष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु-भक्षक आदि सभी प्रकार के जीव मेरे दिये हुए इस जल से तृप्त हों।

जो प्राणी सम्पूर्ण नरकों में नाना प्रकार की यातनाएं भोग रहे हैं उनकी तृप्ति के लिए मैं यह जलदान करता हूँ। जो मेरे बन्धु अथवा अबन्धु हैं, तथा जो अन्य जन्मों में मेरे बन्धु थे एवं और भी जो-जो मुझसे जल की इच्छा रखने वाले हैं, वे सब मेरे दिये हुए जल से परितृप्त हों। क्षुधा और तृष्णा से व्याकुल जीव कहीं भी क्यों न हों, मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनको तृप्ति प्रदान करे, हे नृप! इस प्रकार मैंने तुमसे यह काम्य तर्पण का निरूपण किया, जिसके करने से मनुष्य सकल जगत की तृप्ति से होने वाले पुण्य को प्राप्त होता है।

इस प्रकार उपरोक्त जीवों को श्रद्धापूर्वक काम्य जलदान करने के अनन्तर आचमन करें और फिर सूर्यदेव को जलांजलि दें। उस समय इस प्रकार कहें - 'भगवान् विवस्वान् को नमस्कार है जो वेद-वेद्य और विष्णु के तेजस्वरूप हैं तथा जगत् को उत्पन्न करने वाले, अति पवित्र एवं कर्मों के साक्षी हैं।

आभ्युदयिक श्राद्ध, प्रेतकर्म तथा श्राद्धदि का विचार

और्व जी ने बताया कि - पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता को सचैल वस्त्रों सहित स्नान करना चाहिए। उसके पश्चात् जात-कर्म-संस्कार और **आभ्युदयिक श्राद्ध** करना चाहिए। **प्रेत क्रिया की विधि सुनो**- बन्धु-बान्धवों को चाहिए कि भली प्रकार स्नान कराने के अन्तराल पुष्प-मालाओं से विभषित शव का गांव के बाहर दाह करें और फिर जलाशय में वस्त्र सहित स्नान कर दक्षिण-मुख होकर **यत्र-तत्र स्थितायैदमुकाय'** आदि वाक्यों का उच्चारण करते हुए जलांजलि दें।

एकोदिष्टश्राद्ध विधि - इसमें तिल, गन्ध और जल से युक्त चार पात्र रखें। इनमें से एक पात्र मृत-पुरुष का होता है तथा तीन पितृगण के पात्रों का

सिंचन करें। सम्पूर्ण प्रेत कर्म तीन प्रकार के होते हैं। पूर्व क्रम में दाह से लेकर जल और शस्त्र आदि के स्पर्श पर्यन्त जितने कर्म हैं, उनको पूर्व कर्म कहते हैं।

अग्नि पुराण :- पूजा के अधिकार की सिद्धि के लिए सामान्यतः स्नान-विधि

नारद जी बोले- विप्रवरो! पूजन आदि क्रियाओं के लिए पहले स्नान विधि का वर्णन करता हूँ। पहले नृसिंह-संबंधी बीज या मंत्र से मृतिका हाथ में लें। उसे दो भागों में विभक्त कर लें. एक भाग द्वारा 'नाभि से लेकर पैरों तक लेपन करें, फिर दूसरे भाग के द्वारा अपने अन्य सब अंगों में लेपन कर मल-स्नान सम्पन्न करें। तदन्तर शुद्ध स्नान के लिए जल में डुबकी लगा कर आचमन करें। 'नृसिंह'- मन्त्र से न्यास करके आत्मरक्षा करें। इसके बाद 'तन्त्रोक्त रीति' से विधि-स्नान करें और प्राणायामादि पूर्वक हृदय में भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए **'ओम नमो नारायणाय'** इस अष्टाक्षर मंत्र से हाथ में मिट्टी लेकर उसके तीन भाग करें। फिर नृसिंह मंत्र के जपपूर्वक उन तीनों भागों से तीन बार दिग्बन्ध करें। इसके बाद **'ओम नमो भगवते वासुदेवाय।'** इस प्रकार वासुदेव मंत्र का जप करके संकल्पपूर्वक तीर्थ जल का स्नान करें। फिर वेद आदि के मंत्रों से अपने शरीर का और आराध्यदेव की प्रतिमा या ध्यान कल्पित विग्रह का मार्जन करें। इसके बाद अघमर्षण-मंत्र का जप कर वस्त्र पहन कर मार्जन-मन्त्रों से मार्जन करें। इसके बाद हाथ में जल लेकर नारायण मंत्र से प्राण-संयम करके जल को नासिका से लगाकर सूंघे। फिर भगवान् का ध्यान करते हुए जल का परित्याग कर दें। इसके बाद अर्घ्य देकर **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।'**

इस द्वादशाक्षर मंत्र का जप करें। फिर अन्य देवता आदि का भक्तिपूर्वक तर्पण करें। योगपीठ आदि के क्रम से दिक्पाल तक के मंत्रों का तथा स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का तर्पण करके आचमन करें। फिर अंगन्यास करके

अपने हृदय में मंत्रों का उपसंहार कर पूजन-मन्दिर प्रवेश करें। इसी प्रकार अन्य पूजाओं में भी मूल आदि मंत्रों से स्नान कार्य सम्पन्न करें।

स्नान, संध्या और तर्पण की विधि का वर्णन -

स्नान विधि :-

भगवान् महेश्वर कहते हैं - स्कन्ध! अब मैं नित्य-नैमितिक आदि स्नान, संध्या और प्रतिष्ठा सहित पूजा का वर्णन करूँगा। किसी तालाब या पोखरे से अस्त्र मंत्र 'फट्' - के उच्चारणपूर्वक आठ अंगुल गहरी मिट्टी खोदकर निकालें। उसे सम्पूर्ण रूप से ले आ कर उसी मंत्र द्वारा उसका पूजन करें। इसके बाद शिरोमन्त्र स्वाह- से उस मृतिका को जलाशय के तट पर रख कर अस्त्र मंत्र से उसका शोधन करें। फिर शिखा मंत्र से वषट् मंत्र के उच्चारणपूर्वक उसमें तृण आदि को निकालकर, कवक मंत्र 'हुम्' से उस मृत्तिका के तीन भाग करें। प्रथम भाग की जलमिश्रित मिट्टी को नाभि से लेकर पैर तक के अंग में लगावें। तत्पश्चात् उसे धो कर अस्त्र-मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित हुई दूसरे भाग की दीप्तिमती मृतिका द्वारा शेष सम्पूर्ण शरीर को अनुलिप्त करके दोनों हाथों से कान-नाक आदि इन्द्रियों के छिद्रों को बन्द कर सांस रोक मन-ही-मन कालाग्नि के समान तेजोमय अस्त्र का चिन्तन करते हुए पानी में डुबकी लगाकर स्नान करें। यह मल 'शारीरिक मैल' को दूर करने वाला स्नान कहलाता है। इसे इस प्रकार करके जल के भीतर से निकल आवें और संध्या करके विधि स्नान करें।

हृदय-मंत्र 'नमः' - के उच्चारणपूर्वक अकुशमुद्रा द्वारा सरस्वती आदि तीर्थों में से किसी एक तीर्थ का भावना द्वारा आकर्षण करके, फिर संहार मुद्रा द्वारा उसे अपने शेष समीपवर्ती जलाशय में स्थापित करें। तदन्तर शेष (तीसरे भाग की) मिट्टी लेकर नाभि तक जल के भीतर प्रवेश करें और उत्तराभिमुख हों, बायीं हथेली पर उसके तीन भाग करें। दक्षिण भाग की मिट्टी को अंगन्यास संबंधी मन्त्रों द्वारा (अर्थात् **ओम हृदयाय नमः, शिर से स्वाहा, शिखायै**

वषट्, कवचाय हुम्, नेत्रात्रयाय वौषट् तथा **अस्त्राय फट्** - इन छः मन्त्रों द्वारा) एक बार अभिमन्त्रित करें। पूर्व भाग की मिट्टी को 'अस्त्राय फट्'- इस मन्त्र का सात बार जप करके अभिमन्त्रित करें तथा उत्तर भाग की मिट्टी का **'ओम नमः शिवायः।'** - इस मन्त्र का दस बार जप करके अभिमन्त्रण करें। इस तरह पूर्वोक्त मृत्तिका के तीन भागों का क्रमशः अभिमन्त्रण करना चाहिए। तत्पश्चात् पहले उन मृत्तिकाओं में से थोड़ा सा भाग लेकर सम्पूर्ण दिशाओं में छोड़ें। छोड़ते समय **'अस्त्राय हुं फट्।'** का जप करते रहें। इसके बाद **'ओम नमः शिवायः'** – इस शि-मन्त्र का तथा 'ओम सोमाय स्वाहा'। इस सोम मन्त्र का जप करके जल में अपनी भुजाओं को घुमाकर उसे शिवतीर्थ स्वरूप बना दें तथा पूर्वोक्त अङ्गन्यास संबंधी मन्त्रों का जप करते हुए उसे मस्तक से लेकर पैर तक के सारे अङ्गों में लगावें।

तदन्तर अङ्ग न्यास संबंधी चार मन्त्रों का पाठ करते हुए दाहिने से आरम्भ करके बायें तक के हृदय, सिर, शिखा और दोनों भुजाओं का स्पर्श करें तथा नाक, कान आदि सारे छिद्रों को बंद करके सम्मुखीकरण मुद्रा द्वारा भगवान् शिव, विष्णु अथवा गंगाजी का स्मरण करते हुए जल में गोता लगावें। **'ओम हृदयाय नमः।' शिरसे स्वाहा'। 'शिखायै वषट्।' 'कवचाय हुम।' 'नेत्रत्रयाय वौषट्।' तथा 'अस्त्राय फट्।'** – इन षड्ङ्ग संबंधी मन्त्रों का उच्चारण करके, जल में स्थित हो, बायें और दायें हाथ दोनों को मिलाकर, कुम्भमुद्रा द्वारा अभिषेक करें। फिर रक्षा के लिए पूर्वादि दिशाओं में जल छोड़ें। सुगन्ध और आँवला आदि राजोचित उपचार से स्नान करें। स्नान के पश्चात् जल से बाहर निकल कर संहारिणी-मुद्रा द्वारा उस तीर्थ का उपसंहार करें। इसके बाद विधि-विधान से शुद्ध, संतिता मन्त्र से अभिमन्त्रित तथा निवृत्ति आदि के द्वारा शोधित भस्म से स्नान करें।

'ओम अस्त्राय हुं फट्।' – इस मन्त्र का उच्चारण करके, सिर से पैर तक भस्म द्वारा मल स्नान करके फिर विधिपूर्वक शुद्ध स्नान करें। ईशान,

तत्पुरुष, अघोर, गुह्यक या वामदेव तथा सद्योजात संबंधी मन्त्रों द्वारा क्रमशः मस्तक, मुख, हृदय, गुह्यागङ तथा शरीर के अन्य अवयवों में उद्वर्तन (अनुलेप) लगाना चाहिए। तीनों संध्याओं के समय, निपेदकाल में वर्षा के पहले और पीछे, सोकर खाकर, पानी पीकर तथा अन्य आवश्यक कार्य करके आग्नेय स्नान करना चाहिए। स्त्री, नपुंसक, शूद्र, बिल्ली, शव और चूहे का स्पर्श हो जाने पर भी आग्नेय स्नान का विधान है। चुल्लूभर पवित्र जल पी लें, यही 'आग्नेय-स्नान' है। सूर्य की किरणों के दिखायी देते समय यदि आकाश से जल की वर्षा हो रही हो तो पूर्वाभिमुख हो, दोनों भुजाएं ऊपर उठाकर, ईशान-मन्त्र का उच्चारण करते हुए, सात पग चलकर उस वर्षा के जल से स्नान करें। यह 'माहेन्द्र स्नान' कहलाता है। गौओं के समूह के मध्यभाग में स्थित हो उनकी खुरों से खुद कर ऊपर को उड़ी हुई धूल से इष्ट देव संबंधी मूलमन्त्र का जप करते हुए अथवा कवचमन्त्र (हुम्) का जप करते हुए जो स्नान किया जाता है, उसे 'पावन स्नान' कहते हैं। सद्योजात आदि मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक जो जल से अभिषेक किया जाता है, उसे 'मन्त्र स्नान' कहते हैं। इसी प्रकार वरुण देवता और अग्नि देवता संबंधी मन्त्रों से भी यह स्नान-कर्म सम्पन्न किया जाता है। मन-ही-मन मूल मन्त्र का उच्चारण करके प्राणायामपूर्वक मानसिक स्नान करना चाहिए। इसका सर्वत्र विधान है। विष्णु देवता आदि से संबंध रखने वाले कार्यों में उन-उन देवताओं के मन्त्रों से ही स्नान करावें।

संध्या विधि :

कार्तिकेय ! अब मैं विभिन्न मन्त्रों द्वारा संध्या-विधि का सम्यक् वर्णन करूँगा। भली-भांति देखभाल कर ब्रह्म तीर्थ से तीन बार जल का मंत्र पाठपूर्वक आचमन करें। आचमनकाल में आत्मतत्व, विद्यातत्व, और शिवतत्व इन शब्दों के अन्त में **'नमः' सहित 'स्वाह'** शब्द जोड़ कर मंत्र पाठ करना चाहिए। यथा **'ओम आत्मतत्त्वाय नमः स्वाहा।' 'ओम विद्यातत्त्वाय नमः स्वाहा।'**

'ओम शिवतत्त्वाय नमः स्वाहा।' – इन मन्त्रों से आचमन करने के पश्चात् मुख, नासिका, नेत्र और कानों का स्पर्श करें। फिर प्राणायाम द्वारा सकलीकरण की क्रिया सम्पन्न करके स्थिरतापूर्वक बैठ जायें। इसके बाद मन्त्र साधक गुरु मन ही मन तीन बार शिव संहिता की आवृत्ति करें और आचमन एवं अंगन्याश करके प्रातःकाल ब्रह्मी संध्या का इस प्रकार ध्यान करें।

संध्या देवी प्रातःकाल ब्रह्मशक्ति के रूप में हंस पर आरूढ़ हो कमल के आसन पर विराजमान हैं, उनकी अंगकान्ति लाल है। ये चार मुख और चार भुजाएं धारण करता है। उनके दाहिने हाथ में कमल है और स्फटिकाक्ष की माला तथा बायें हाथों में दण्ड एवं कमण्डलु शोभा पाते हैं। मध्याह्न काल में वैष्णवी शक्ति के रूप में संध्या का ध्यान करें। वे गरुड की पीठ पर बिछे हुए कमल के आसन पर विराजमान हैं। उनकी अंगकान्ति श्वेत है। वे अपने पायें हाथ में शंख और चक्र धारण करती हैं तथा दायें हाथों में गदा एवं अभय की मुद्रा से सुशोभित है। सायंकाल में संध्यादेवी का रुद्रशक्ति के रूप में ध्यान करें। वे वृषभ की पीठ पर बिछे हुए कमल के आसन पर बैठी है। उनके तीन नेत्र हैं। दाहिने हाथ में त्रिशूल और रुद्राक्ष धारण करती है और बायें हाथ में अभय एवं शक्ति से सुशोभित हैं। ये संध्याएं कर्मों की साक्षिणी है। अपने-आपको उनकी प्रभा से अनुगत समझे। इन तीन के अतिरिक्त एक चौथी संध्या है, जो केवल ज्ञान के लिए है। उसका आधी रात के आरम्भ में बोधात्मक साक्षात्कार होता है।

ये तीन संध्याएं क्रमशः हृदय, बिन्दु और ब्रह्मरन्ध्र में स्थित है। चौथी संध्या का कोई रूप नहीं। शिव सबसे परे हैं, इसलिए इसे 'परमा' संध्या कहते हैं। तर्जनी अंगुली के मूल भाग में पितरों का, कनिष्ठा के मूलभाग में प्रजापतिका, अंगुष्ठ के मूलभाग में ब्रह्मा का और हाथ के अग्र भाग में देवताओं का तीर्थ है। दाहिने हाथ की हथेली में देवताओं का तीर्थ है। दाहिने हाथ की हथेली में अग्नि का, बायीं हथेली में सोम का तथा अंगुलियों के सभी पर्वों एवं संधियों में ऋषियों

का तीर्थ है। संध्या के ध्यान के पश्चात् शि-संबंधी मन्त्रों द्वारा (जलाशय) - को शिवस्वरूप बनाकर 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि संहिता-मन्त्रों द्वारा उसके जल से मार्जन करें। बायें हाथ पर तीर्थ के जल को गिराकर उसे रोके रहें और दाहिने हाथ से मंत्रपाठ पूर्वक क्रमशः सिरका सेचन करना 'मार्जन' कहलाता है।

इसके बाद अघमर्षण करें। दाहिने हाथ के दोने में रखे हुए बोधरूप शिवमय जल को नासिका के समीप ले जाकर बायीं -इडा नाड़ी द्वारा सांस को खींचकर रोकें और भीतर से काले रंग के पाप पुरुष को पिंगला नाड़ी द्वारा बाहर निकालकर उस जल में स्थापित करें। फिर उस पापयुक्त जल को हथेली द्वारा ब्रजमयी शिला की भावना करके उस पर दे मारें। इससे अघमर्षण कर्म सम्पन्न होता है। तदन्तर कुश, पुष्प, अक्षत् और जल से युक्त अर्घ्यांजलि लेकर, उसे 'ओम नमः शिवाय स्वाहाः।' - इस मन्त्र से भगवान् शिव को समर्पित करें और यथाशक्ति गायत्री मंत्र का जप करें।

तर्पण विधि :–

भगवान् महेश्वर कहते हैं– अब मैं तर्पण विधि का वर्णन करूँगा। देवताओं के लिए देवतीर्थ से उनके नाममंत्र के उच्चारणपूर्वक तर्पण करें। '**ओम हूं शिवाय स्वाहा।**' ऐसा कहकर शिव का तर्पण करें। इसी प्रकार अन्य देवताओं को भी उनके स्वाहा युक्त नाम लेकर जल से तृप्त करना चाहिए। **ओम हां हृदयाय नमः। ओम हींशिरसे स्वाहा। ओम हूं शिखायै वषट्। ओम हैं कवचाय हुम्। ओम हौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओम हः अस्त्राय फट्।**' इन वाक्यों को क्रमशः पढ़कर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं अस्त्र-विषयक न्याय करना चाहिए। आठ देव गणों को उनके नाम के अन्त में 'नमः' पद जोड़ कर तर्पणार्थ जल अर्पित करना चाहिये। यथा – '**ओम हां आदित्येभ्यो नमः। ओम हाँ वसुभ्यो नमः। ओम हां आदित्येन्यो नमः। ओम हां वासुभ्यो नमः। ओम हां रुद्रेभ्यो नमः। ओम हां विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ओम हा.**

मरुद्भ्यो नमः। ओम हां भृगुभ्योनमः। ओम हाँ अंगिरोभ्यो नमः।' तत्पश्चात् जनेऊ को कण्ठ में माला की भांति धारण करके ऋषियों का तर्पण करें। **'ओम हां अन्नये नमः। ओम हां वसिष्ठाय नमः। ओम हां पुलस्तयेनमः। ओम हां क्रतवे नमः। ओम हां भरद्वाजाय नमः। ओम हां विश्वामित्राय नमः। ओम हां प्रचेतसे नमः। ओम हां. मरीचये नमः।'** इन मन्त्रों को पढ़ते हुए अत्रि आदि ऋषियों को एक-एक अंजलि जल दें। तत्पश्चात् सनकादि मुनियों को दो-दो अंजलि जल देते हुए निम्नांकित मंत्रवाक्य पढ़े – **ओम हां सनकाय वषट्। ओम सनातनाय वषट्। ओम हां सनातनाय वषट्। ओम हां सनत्कुमाराय वषट्। ओम हां कपिलाय वषट्। ओम हां पंचशिखाय वषट्। ओम हां ऋभवे वषट्'** इन मन्त्रों द्वारा जुड़े हाथों की कनिष्ठाकाओं के मूल भाग से जलांजलि देना चाहिए।

'ओम हां सर्वेभ्यो भूतेभ्यो वषट्' – इस मन्त्र से वषट्स्वरूप भूतगणों का तर्पण करें। तत्पश्चात् यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर करके दुहरे मुड़े हुए कुश के मूल और अग्रभाग से तिल सहित जल की तीन-तीन अंजलियां दिव्य पितरों के लिए अर्पित करें। **ओम हां कव्यवाहनाय स्वधा। ओम हां अनलाप स्वधा। ओम हां सोमाय स्वधा। ओम हां यमाय स्वधा। ओम हां अर्यम्णे स्वधा। ओम हां अग्निष्वात्तेभ्यः स्वधा। ओम हां बर्हिषद्भ्यः स्वधा। ओम हां आज्यपेभ्यः स्वधा। ओम हां सोमपेभ्यः स्वधा।'** –इत्यादि मन्त्रों का उच्चरण कर विशिष्ट देवताओं की भांति दिव्य पितरों को जलांजलि से तृप्त करना चाहिए। **'ओम हां ईशानाय पित्रे स्वधा।' कहकर पिता को, 'ओम हां पितामहाय स्वधा।'** कहकर पितामह को तथा 'ओम शान्तप्रपितामहाय स्वधा।' कहकर प्रपितामहको भी तृप्त करें। इसी प्रकार समस्त प्रेत-पितरों का तर्पण करें। यथा – **'ओम हां पितृभ्यः स्वधा। ओम हां पितामहेभ्यः स्वधा। ओम हां प्रपितामहेभ्यः स्वधा। ओम हां वृद्धप्रपितामहेभ्यः**

स्वधा। ओम हां मातृभ्यः स्वधा। ओम हां मातामहेभ्यः स्वधा। ओम हा. प्रमातामहेभ्यः स्वधा। ओम हां वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा। ओम हां सर्वेभ्यः पितृभ्यः स्वधा। ओम हां सर्वेभ्यः ज्ञातिभ्यः स्वधा। ओम हां सर्वाचर्येभ्य स्वधा ओम हां दिग्भयः स्वधा। ओम हां दिक्पतिभ्यः स्वधा। ओम हां सिद्धेभ्य स्वधा। ओम हां मातृभ्यः स्वधा। ओम हां ग्रहेभ्यः स्वधा। ओम हां रक्षोभ्यः स्वधा।' – इन वाक्यों को पढ़ते हुए क्रमशः पितरों, पितामहों, वृद्धप्रपितामहों, माताओं, मातामहों, प्रमातामहों, वृद्धप्रमातामहों सभी पितरों, सभी ज्ञातिजनों सभी आचार्यों, सभी दिशाओं, दिक्पतियों, सिद्धों, मातृकाओं, ग्रहों और राक्षसों को जलांजलि दें – **शिव पुराण– शौचाचार, स्नान, तर्पण।**

सूत जी बोले-ऋषियों, रात के पिछले पहर को उषाःकाल जानना चाहिए। उस अन्तिम पहर का जो आधा या मध्य भाग है, उसे संधि कहते हैं। उस संधिकाल में उठकर द्विजको मल-मूत्र आदि का त्याग करना चाहिए। घर से दूर जाकर बाहर से अपने शरीर को ढके रखकर दिन में उत्तराभिमुख बैठकर मल-मूत्र का त्याग करें। यदि उत्तराभिमुख बैठने में कोई रुकावट हो तो दूसरी दिशा की ओर मुख करके बैठें। जल, अग्नि, ब्राह्मण आदि तथा देवताओं का सामना बचाकर बैठें। मल-त्याग करके उठने पर फिर उस मल को न देखें। तदन्तर जलाशय से बाहर निकले हुए जल से ही गुदा की शुद्धि करें अथवा देवताओं, पितरों तथा ऋषियों के तीर्थ में उतरे बिना ही प्राप्त हुए जल से शुद्धि करनी चाहिए। शौच शुद्धि के पश्चात् उठकर अन्यत्र जायें और हाथ-पैरों की शुद्धि करके आठ बार कुल्ला करें। जिस किसी वृक्ष पत्ते से अथवा उसके पतले काष्ठ से जल बाहर दातुन करना चाहिए। उस समय तर्जनी अंगुलि का उपयोग न करें। यह दन्तशुद्धि का विधान बताया गया है। तदन्तर जल संबंधी देवताओं को नमस्कार करके मंत्र पाठ करते हुए जलाशय में स्नान करें। यदि कण्ठ तक

या कमर तक पानी में खड़े होने की शक्ति न हो तो घुटने तक जल में खड़ा हो अपने उपर जल छिड़क कर मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान -कार्य सम्पन्न करें। विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वहां तीर्थ जल से देवता आदि का स्नानांग-तर्पण भी करें।

इसके बाद धौत वस्त्र लेकर पांच कच्छ करके उसे धारण करें। साथ ही कोई उत्तरीय भी धारण कर लें, क्योंकि संध्या वन्दना आदि सभी कर्मों में उसकी आवश्यकता होती है। नदी आदि तीर्थों में स्नान करने पर स्नान संबंधी उतारे हुए वस्त्र को वहां न धोयें। स्नान के पश्चात् विद्वान् पुरुष भीगे हुए उस वस्त्र को बावड़ी में, कुएं के पास अथवा घर आदि में ले जायें और वहां पत्थर पर, लकड़ी आदि पर, जल में या स्थल में अच्छी तरह धोकर उस वस्त्र को निचोड़ें। द्विजो ! वस्त्र को निचोड़ने से जो जल गिरता है, वह एक श्रेणी के पितरों की तृप्ति के लिये होता है।

संधिप्रोक्षण विधि - 'आपो हि ष्ठा' इत्यादि मंत्र से पाप-शान्ति के लिये सिर पर जल छिड़कें तथा **'यस्य क्षयाय'** इस मन्त्र को पढ़कर पैर पर जल छिड़कें। उक्त मन्त्र में तीन ऋचाएं हैं और प्रत्येक ऋचा में गायत्री छन्द के तीन-तीन चरण हैं। इनमें से प्रथम ऋचा के तीन चरणों का पाठ करते हुए क्रमशः पैर, मस्तक और हृदय में जल छिड़कें। दूसरी ऋचा के तीन चरणों को पढ़कर क्रमशः मस्तक, हृदय और पैर में जल छिड़कें तथा तीसरी ऋचा के तीन चरणों का पाठ करते हुए क्रमशः हृदय, पैर और मस्तक का जल से प्रोक्षण करें। इसे विद्वान् पुरुष 'मन्त्रस्नान' मानते हैं। किसी अपवित्र वस्तु से किंचित् स्पर्श हो जाने पर, अपना स्वास्थ्य ठीक न रहने पर राजा और राष्ट्र पर भय उपस्थित होने की विवशता आ जाने पर **'मन्त्र-स्नान'** करना चाहिए। प्रातःकाल **'सूर्यश्च मा मान्युश्च'** इत्यादि सूर्यानुवाक से तथा सायंकाल **'अग्निश्च मा मन्युश्च'** इत्यादि अग्नि संबंधी अनुवाक से जल का आचमन करके पुनः जल से अपने अंगों का प्रोक्षण करें। मध्याह्नकाल में भी **'आपः पुनन्तु'** इस मन्त्र से आचमन करके

पूर्ववत् प्रोक्षण या मार्जन करना चाहिए। प्रातःकाल की संध्योपासना में गायत्री मंत्र का जप करना चाहिए।

अर्थसिद्धि के लिये ईश, गौरी, कार्तिकेय, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा और यम का तथा ऐसे ही अन्य देवताओं का भी शुद्ध जल से तर्पण करें। फिर तर्पण कर्म को ब्रह्मार्पण करके शुद्ध आचमन करें।

गरुड़ पुराण- जल और श्राद्ध

और्ध्वदैहिक कर्म में उद्कुम्भदान का माहात्म्य- तार्क्ष्य एवं श्री कृष्ण संवाद

तार्क्ष्य ने कहा- हे जनार्दन! जिस प्रकार से जलपूर्ण कुम्भ का दान करना चाहिए, उसका वर्णन करें। यह कार्य किस विधि से करना चाहिए? इसके लक्षण कैसे हैं? इसकी पूर्ति कैसे होती है? इसको किसे देना चाहिए? प्रेतों को संतुष्टि प्रदान करने में समर्थ इन कुम्भों का दान किस काल में उचित है? यह बताने की कृपा करें।

श्री कृष्ण ने कहा - हे गरुड! जलपूर्ण कुम्भदान के विषय में पुनः मैं तुम्हें भली प्रकार से बता रहा हूँ। हे महापक्षिन्! अन्न और जल से परिपूर्ण कुम्भों का दान प्रेत के उद्देश्य से देना चाहिए। यह दान विशेष रूप से प्रेत के लिए मुक्तिदायक है। बारहवें दिन, छठे मास, त्रिपक्ष और वार्षिक श्राद्ध के दिन विशेष रूपों, जीव को यममार्ग में सुख प्रदान करने के लिये उद्कुम्भ देना चाहिए। गोबर से भलीभांति लीपकर स्वच्छ बनायी गयी भूमि पर प्रतिदिन तिल या पक्वान्न से युक्त जलपूर्ण कुम्भ का दान देना चाहिए। उसी स्थान पर प्रेत के निमित्त स्वेच्छा से उस पात्र का दान भी दे देना चाहिए। उससे प्रसन्न होकर प्रेत यमदूतों के साथ चला जाता है।

प्रेत के द्वादशाह– संस्कार के अवसर पर जल पूति कुम्भों का दान विशेष महत्व रखता है। यजमान उस दिन वह पक्वान्न और फल से परिपूर्ण एक वर्द्धनी विशेष प्रकार का जलपात्र भगवान् विष्णु के लिए संकल्प करके सुयोग्य एवं सच्चरित्र ब्राह्मण को प्रदान करें। तदनन्तर वह एक वर्द्धनी, पक्वान्न तथा फल धर्मराज को समर्पित करें। उससे संतुष्ट होकर धर्मराज उस प्रेत को मोक्ष प्रदान करते हैं। उसी समय एक वर्द्धनी चित्रगुप्त के लिए दान में देना चाहिए। उसके पुण्य से प्रेत वहां पहुंच कर सुखी रहता है।

अपने मृत पिता के कल्याणार्थ उड़द और जल से पूर्ण सोलह घंटों का दान दें। उसका विधान यह है कि उत्क्रान्ति श्राद्ध से लेकर पोडश श्राद्ध तक के लिए सोलह ब्राह्मणों को एक-एक घट दान में दिया जाये। एकादशाह से लेकर वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन नियमपूर्वक पक्वान्न एवं जल से पूर्ण एक घट का दान देय है। हे खगेश्वर! यह बात तो उचित है कि जलपूर्ण पात्र और पक्वान्नपूरित बड़े घटों का दान नित्य दिया जाये, किन्तु वहीं पर वर्द्धनी कलश ऐसी होनी चाहिए जिसके ऊपर बांस निर्मित पात्र में मिष्ठान्न रखकर पितृ का आह्वान करके कुंकुम, अगुरु आदि सुगन्धित पदार्थों से उनका पूजन करें। तत्पश्चात् वस्ताच्छादन करके विधिवत् संकल्पपूर्वक वैदिक धर्माचरण से परिपूर्ण कुलीन ब्राह्माण को नित्य ऐसे एक-एक घट दान दें। यह दान विद्या और सदाचार से युक्त ब्राह्मण को ही देना चाहिए। कभी मूर्ख को यह दान न दें, क्योंकि वेदसम्मत आचार-विचार वाला ब्राह्मण यजमान और स्वयं का उद्धार करने में समर्थ है।

ब्रह्मपुराण-श्राद्ध कल्प- व्यासजी और मुनियों का संवाद

व्यास जी ने कहा कि- पूर्वजों में से जो नरक में निवास करते हैं, जो पशु-पक्षी की योनि में पड़ते हैं तथा जो भूत आदि के रूप में स्थित हैं, उन सब को विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाला यजमान तृप्त करता है। जिससे जिसकी तृप्ति होती है, वह बतलाता हूँ, सुनो। मनुष्य पृथ्वी पर जो अन्न बिखेरते हैं, उससे पिशाच

योनियों में पड़े हुए पितरों की तृप्ति होती है। स्नान के वस्त्र से जो जल पृथ्वी पर टपकता है उससे वृक्षयोनि में पड़े हुए पितर तृप्त होते हैं। नहाने पर अपने शरीर से जो जल के कण पृथ्वी पर गिरते हैं, उनसे उन पितरों की तृप्ति होती है, जो देवभाव को प्राप्त हुए हैं। पिण्डों के उठाने पर जो जल के कण पृथ्वी पर गिरते हैं, उनसे पशु-पक्षी की योनि में पड़े हुए पितरों की तृप्ति होती है। कुल में जो बालक दांत निकलने के पहले दाह आदि कर्म के अनाधिकारी रह कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं, सम्मार्जन जल का आहार करते हैं और चरणों का प्रक्षालन करते हैं, उस जल से अन्यान्य पितरों की तृप्ति होती है। ब्राह्मणों! इस प्रकार विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाले पुरुषों के जो पितर दूसरी-दूसरी योनियों में चले गये हैं, वे भी यजमान और ब्राह्मणों के हाथ से बिखरे हुए अन्न और जल के द्वारा पूर्ण तृप्त होते हैं।

नारद पुराण – श्राद्ध तथा तर्पण का विवेचन

जलाशय बनवाना आदि कार्य पूर्त कहा जाता है। विशेषतः बगीचा, कुआं, पोखरे और देव मन्दिर ये यदि गिरते या नष्ट होते हों तो जो इनका उद्धार करता है, वह कर्म का फल भोगता है, क्योंकि ये सब पूर्त कर्म हैं।

श्राद्ध, तर्पण

अन्न, **पानी**, घोड़ा, गौ, वस्त्र, शय्या, सूत और शासन इन आठ वस्तुओं का दान प्रेतलोक के लिए बहुत उत्तम है।

अन्न और जल से अथवा दूध एवं फल-मूल आदि से पितरों को सन्तुष्ट करते हुए प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिए। **प.पु.भू.ख.**

जल के संबंध में कहानियां

हमारे पुराणों में जल से संबंधित विभिन्न प्रकार की कहानियों को रचा गया है, जिनमें सारगर्भितपूर्ण दृष्टान्त दिये गये हैं। जिनमें परमानन्द परमेश्वर, जगजननी माता, परमपिता ब्रह्मा,देवता, ऋषि, मुनियों, राक्षस, दानव, दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, वनस्पति आदि जल से संबंधित विवि प्रकार की रोचक कहानियों को संकलित किया गया है।

पद्म पुराण– पाताल खण्ड – जल महिमा

सीता आगमन, यज्ञ का आरम्भ तथा अश्वमेध – कथा-श्रवण की महिमा में जल का वर्णन में शेष जी ने कहा कि – अश्वमेध यज्ञ में अश्व को नहलाने के लिए निमित्त अमृत के समान जल मंगाने के लिए चौंसठ राजाओं को रानियों सहित बुलाया था। वशिष्ठ ने स्वयं भी शीतल एवं पवित्र जल से भरी सरयू में जा कर वेद मंत्र के द्वारा उसके जल को अभिमन्त्रित किया। वे बोले – 'हे जल ! तुम सम्पूर्ण लोकों की रक्षा करने वाले श्री रामचन्द्र जी के यज्ञ के लिए निश्चित किये हुए इस अश्व को पवित्र करो।'

हरिवंश पुराण एकचत्वारिंशोध्यायः –
भगवान विष्णु का नरसिंह रूप धारण करना–
वैशम्पायनजी और जनमेजय संवाद।

वैशम्पायनजी कहते हैं – जनमेजय! अब नरसिंह अवतार का चरित्र सुनो, जिसमें भगवान् ने नर और सिंह का रूप धारण करके हिरण्यकशिपु का वध किया था। राजन्! पूर्व काल के सत्ययुग की बात है, दैत्यों के आदि पुरुष प्रभावशाली हिरण्यकशिपु ने बड़ी भारी तपस्या की। उसने काष्मौनव्रत में स्थित होकर ग्यारह हजार पाँच सौ वर्षों तक जल में निवास किया। तदन्तर उसके नाम 'मनोनिग्रह' दम 'इन्द्रिय-संयम' ब्रह्मचर्य, तप और नियम से ब्रह्मा जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। समस्त चराचर प्राणियों के गुरु, ब्रह्मवेताओं में श्रेष्ठ एवं श्रीसम्पन्न, स्वयंभू भगवान् ब्रह्माजी सूर्य के समान वर्ण वाले हंसयुक्त तेजस्वी विमान द्वारा आदित्यों, वसुओं, साध्यों, मरुदणों, देवताओं, विश्वसहायक, रुद्रों, यक्षों, राक्षसों, किन्नरों तथा दिशा, विदिशा, नदी, समुद्र नक्षत्र एवं मुहूर्त के अधिष्ठाता देवगणों, आकाशचारी महागहों, देवों, ब्रह्मार्षियों, सिद्धों, सप्तर्षियों, पुण्यकर्मा राजर्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं तथा अन्यान्य देवसमूहों के साथ उनसे घिरे हुए वहां पधारे। पधारकर वे उस दैत्य से इस प्रकार बोले– ब्रह्मा जी ने कहा– उत्तम व्रत का पालन करने वाले दैत्यराज! तुम मेरे भक्त हो, तुम्हारी इस तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा भला हो, तुम कोई वर मांगों और मनोवांछित पदार्थ प्राप्त करो। यह सुनकर दानवराज श्रीमान् हिरण्यकशिपु के दिल में बड़ी प्रसन्नता हुई, उसने हाथ जोड़ कर यह बात कही।

हिरण्यकशिपु बोला– भगवान्! देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, मनुष्य तथा पिशाच– ये कोई भी मुझे किसी तरह मार न सके।

सर्वलोकपितामह! तपस्वी ऋषि कुपित होकर मुझे कभी शाप न दें, यही वर मैंने मांगा है। न अस्त्र से न शस्त्र से, न पर्वत से, न वृक्ष से, न सूखे से न गीले से और न दूसरे ही किसी आयुद्ध से मेरा वध हो। न स्वर्ग में, न पाताल में, न आकाश में, न भूमि पर, न रात में, न दिन में और न किसी दूसरे निमित्त से मेरा वध हो। जो भृत्यों सेनाओं और वाहनों सहित मुझे एक ही थप्पड़ से

मारकर नष्ट कर देने की शक्ति रखता हो, वही मेरे लिए मृत्यु रूप हो। मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र और दसों दिशाएं हो जाऊं। मैं ही काम, क्रोध, वरुण, यम, इन्द्र, धनाध्यक्ष कुबेर, यक्ष और किम्पुरुषों का स्वामी हो जाऊँ।

सम्पूर्ण लोकों के पितामह! देवेश्वर! महासमर में दिव्य अस्त्र मूर्तिमान् होकर मेरे पास स्वयं आ जायें।

ब्रह्माजी ने कहा – तात! ये दिव्य और अद्भुत वर मैंने तुम को दे दिया। वत्स! सम्पूर्ण कामनाओं को देने वाले ये दुर्लभ वर मानवलोक के लिये अलभ्य हैं। किन्तु तुम्हें तपोबल से प्राप्त हो गये। थोड़ी सी इच्छा होते ही तुम सब कामनाओं को प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है।

वैशम्पायनजी कहते हैं – जनमेजय! ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा आकाश में ही उस वैराज नामक ब्रह्मधाम को चले गये, जो ब्रह्मर्षियों द्वारा सेवित है। हिरण्यकशिपु को वरदान मिलने का समाचार सुनते ही देवता, नाग, गन्धर्व और मुनि ब्रह्मा जी की सेवा में उपस्थित हुए। देवता बोले– भगवान्! इस वर के प्रभाव से उन्मत हुआ असुर हम लोगों को बहुत कष्ट देगा, अतः हमारे ऊपर प्रसन्न होइये और उसके वध का भी कोई उपाय सोचिए, क्योंकि आप ही सम्पूर्ण भूतों के आदिस्रष्टा, स्वयं प्रभावशाली, हव्य-काव्य के निर्माता तथा अव्यक्त प्रकृति और ध्रुवस्वरूप है।

वैशम्पायनजी कहते हैं – जनमेजय! देवताओं का लोक हितकारी वचन सुनकर भगवान् प्रजापति ने अपने सुशील अमृतवचनों द्वारा उन सब देवताओं को आश्वासन देते हुए कहा– 'देवताओं! उस असुर को अपनी तपस्या का फल अवश्य प्राप्त होगा। फल भोग के द्वारा जब तपस्या की समाप्ति हो जायेगी, तब साक्षात् भगवान् विष्णु इस दैत्य का वध करेंगे। भगवान् नारायण

की नाभि कमल से जन्म-ग्रहण करने वाले ब्रह्मा जी का यह वचन सुनकर समस्त देवता प्रसन्न हो अपने-अपने दिव्य स्थानों को लौट गये। उस वर के प्राप्त होते ही दैत्य हिरण्यकशिपु सारी प्रजा को सताने लगा। ब्रह्मा जी के वरदान से उसका घमण्ड बहुत बढ़ गया। उस पराक्रमी दैत्य ने विभिन्न आश्रमों में जाकर कठोर व्रत का पालन करने वाले जितेन्द्रिय एवं सत्य-धर्मपरायण समस्त ऋषियों और ब्राह्मणों का घोर तिरस्कार किया। तीनों लोकों में निवास करने वाले समस्त देवताओं को पराजित करके त्रिलोकी के राज्य को अपने अधिकार में लाकर वह महान् असुर दानवराज हिरण्यकशिपु स्वर्ग लोक में निवास करने लगा। जब वर के मद से उन्मत हो कालधर्म से प्रेरित हुए उस असुर ने दैत्यों को यज्ञभाग का अधिकारी बना दिया, और देवताओं को उस अधिकार से वंचित कर दिया, तब आदित्य साध्य, विश्वदेव, वसु, रुद्र, देवगण, यक्ष, देवता, द्विज और महर्षि शरणागतवत्सल उन मछली भगवान विष्णु की शरण में गये। जो देव 'प्रकाशमान दिव्य विग्रहधारी, सर्वदेव स्वरूप, यज्ञपुरुष सनातन ब्रह्मदेव, भूत, वर्तमान और भविष्य रूप तथा प्रजाजनों से अभिवन्दित हैं।

देवता बोले – महाभग नारायण देव! हम आपकी शरण में आये हैं। आप ही हमारे लिए सबसे उत्कृष्टधाता 'धारण-पोषण करने वाले' हैं और आप ही हमारे परम गुरु हैं।

सुरश्रेष्ठ! आप ही हम ब्रह्मादि देवताओं के भी परम देवता हैं। निर्मल कमलदल के नेत्र वाले नारायण! आप शत्रुपक्ष को भय देने वाले हैं। प्रभो! आप दैत्यवंश के विनाश और हमारी रक्षा के लिए सदा उद्यत रहें। भगवान्! आप दैत्यराज हिरण्यकशिपु को मार डालिये और उसके अत्याचार से रक्षा कीजिए।

भगवान् विष्णु बोले – अमरो! भय छोड़ों, मैं तुम्हें अभय दान देता हूँ। देवताओं! तुम पुनः शीघ्र ही पहले की भांति स्वर्गलोक पर अधिकार प्राप्त कर लोगे। मैं अभी वरदान से घमंड में भरे हुए इस दानवराज दितिकुमार

हिरण्यकशिपु को, जो देवेश्वरों के लिये अवध्य बना हुआ है, इसके सहायक गणों सहित मार डालता हूँ।

वैशम्पायन जी कहते हैं – जनमेजय! ऐसा कहकर भगवान् विष्णु देवताओं को तो विदा कर दिया और स्वयं हिरण्यकशिपु के वध का संकल्प लेकर वे थोड़े ही समय में हिमालय पर्वत के पास आ गये। वहां आकर उन्होंने सोचा कि मैं कौन सा रूप धारण करके इस महान् असुर का वध करूं, जो इस देव द्रोही के वध के लिए सिद्धि–सफलता प्रदान करने वाला हो। तदनन्तर उन्होंने पहले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था, ऐसा विशाल नरसिंह रूप धारण किया। वह रूप दैत्य, दानव और राक्षसों के लिए अजेय था। इसके बाद महाबाहु श्री हरि ने ओंकार को अपना सहायक बनाकर साथ ले लिया। ओंकार की सहायता से सम्पन्न हुए वे सर्वसमर्थ अविनाशी परमेश्वर भगवान् विष्णु हिरण्यकशिपु के स्थान पर गये, वे तेज से सूर्य के समान और कान्ति से दूसरे चन्द्रमा के समान जान पड़ते थे। उन सर्वव्यापी परमेश्वर ने आधा शरीर मनुष्य का, आधा सिंह का सा बनाकर एक हाथ से दूसरे हाथ को रगड़ते हुए नरसिंह - शरीर से युक्त हो हिरण्यकशिपु की वह विस्तृत रमणीय मनोरम, समस्त मनोवाच्छित भोगों से युक्त एवं परम् उज्ज्वल दिव्य सभा देखी। उस सभा भवन की लम्बाई डेढ़ सौ योजन और चौड़ाई सौ योजन की थी। उसकी ऊंचाई पांच योजन की थी। वह आकाश में ही स्थित रहने वाली और सभासदों की इच्छानुसार चलने वाली थी। उसमें बुढ़ापा, शोक और थकावट– इन दोषों का प्रवेश नहीं था। वह अविचल, शिव 'सुखद' एवं सुन्दर थी। उसमें सुन्दर सिंहासन सजाकर रखे गये थे। वह रमणीय सभा अपने तेज से अग्नि के समान प्रज्जवलित हो रही थी। उसके अन्दर जलाशय बना हुआ था। साक्षात् विश्वकर्मा ने उसका निर्माण किया था। वह फल-फूल देने वाले दिव्य रत्नमय वृक्षों से सुशोभित थी। उसके भीतर तने हुए चंदोवों में नीले, पीले, काले, श्याम, श्वेत और लाल रंग की झालरें लगी थीं

तथा उन्हीं में गुच्छे लटकाये गये थे, साथ ही उनमें सैकड़ों मंज्जरियाँ जड़ी हुई थीं। बहुमूल्य आसनों से युक्त तथा तेज से प्रज्जवलित होती हुई सी वह रमणीय सभा आकाश में श्वेत बादलों के समान दिखलायी देती थी और जल में तैरती हुई विशाल नौकाएँ जान पड़ती थी। वह विशेष सौन्दर्य से सुशोभित तथा अतिशय दीप्ति से प्रकाशित थी, अपनी दिव्य सुगन्ध से वह मन को मोह लेती थी। वहां न सुख था और न दुःख, न तो सर्दी का अनुभव होता था और न गर्मी का ही। उस सभा में पहुंच कर सदस्यगण भूख, प्यास, ग्लानि का अनुभव नहीं करते थे, वह नाना रूप वाले विचित्र अत्यन्त प्रकाशमान एवं दिव्य मणिमय खंभों से निर्मित हुई थी, बहुत टिकाऊ और सुदृढ़ थी। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि से भी बढ़कर तेजोराशि से युक्त तथा अपनी ही प्रवाह से प्रकाशित होने वाली थी। स्वर्ग के पृष्ठ भाग पर स्थित हो वह सभा सूर्यदेव को तिरस्कृत करती हुई सी अपनी दीप्ति से प्रकाशित होती थी, दिव्य और मानव सभी तरह के भोग वहां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते थे। अक्षय भक्ष्य, भोज्य वहां सदा प्रस्तुत रहता था, पवित्र गन्ध वाले पुष्पहार वहां बराबर बनते थे। वहां गर्मी में शीतल जल और सर्दी में गर्म जल सदा सुलभ होता था। उस समय भगवान् नृसिंह ने देखा, वहां सरिताओं और सरोवरों के तट पर विविध प्रकार के मनोहर वृक्ष शोभा पाते थे, उनकी डालियों के अग्र भाग फूलों के भार से लदे हुए थे। वे विशाल शाखाओं से सुशोभित थे। नये-नये पल्लवों के अंकुर धारण करते थे और फैली हुई लता-बेलों के विस्तार से आच्छादित हो रहे थे। उनके फूलों में मनोहर गन्ध और फलों में स्वादिष्ट रस थे। उस सभा में भगवान् ने जहां-जहां शीतल जल, सरोवर तथा सम्पूर्ण तीर्थ देखे। वे सरोवर नलिन, पुण्डरीक तथा शदल नाम वाले सुगन्धित कमलों से सुशोभित थे, लाल और नीलकमल तथा कुमकुद उनमें छा रहे थे। उन सरोवरों में अपनी प्रियतमाओं का साथ लिए धार्तराष्ट नामक दकवप्रिय हंस, कादम्ब, चक्रवाक, सारस और कुरर आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। वे तालाब निर्मल स्फटिक मणि के समान जल से भरे थे, उनमें श्वेत अष्टदल कमल शोभा

पाते थे। कलहंसों के गीत और सारिकाओं के कलरव वहां गूंजते रहते थे। वहां वृक्षों की शाखाओं तथा शिखाओं पर भगवान् ने नाना प्रकार के फूल और मंजरी धारण करने वाली सुगन्धित लताएं फैली हुई देखीं। उस सभा भवन में केवड़े, अशोक, सरल, पुंनाग, सुन्दर भवनों, नागकेशर, तिक, अर्जन, आम, नीम, नागपुष्प, कदम्ब, बकुल, धव, प्रियंगु, पाटल, सेमल, हरिद्रक, साल, ताल, प्रियाल, चम्पा तथा अन्य मनोरम पुष्पित वृक्ष शोभा पा रहे थे, मूंगे के वृक्ष अरुण कान्ति से ऐसे सुन्दर तने और शाखा वाले वांजुल नामक वृक्ष जो अशोक की ही जाति के हैं, वहां शोभा पाते थे, उनकी ऊँचाई कई ताड़ के बराबर थी और आभा अंजल तथा अशोक के समान प्रतीत होती थी। वरण, वत्सनाभ, कटहल, चन्दन, नील, सुमना, पीत, अम्ल, पीपल, नेन्दूक, प्राचीन, आंवले, लोध, मल्लिका, भद्रदारू, आम्रतक, अमला, जामुन, लकुच, बड़हर, शैल, बालूक, सर्ज, अर्जुन, कन्दुरव, पतंग, कुटज, लालकुरबक, नीप, अकरू, भव्य, अनार, बिजौरा, नीबू, कालीयक, दुकूल, हिंगु, तैलपर्णिक, खजूर, नारियल, सुपारी, हर्रे, महुवा, छितवन, बेल, पारावत, पनस, नाना प्रकार की झाड़ियों और लताओं से घिरे हुए तमाल, पत्र-पुष्प और फलों से युक्त भांति-भांति की बल्लरियां – ये तथा और भी बहुत से जंगली वृक्ष सब ओर शोभा पाते थे। वहां के फूली फली डालियों वाले विशाल वृक्षों पर चकोर, शतपत्र, मतवाले कोकिल तथा सारिका आदि पक्षी झुंड-के-झुंड आ-आ कर बैठते थे। वृक्षों के अग्रभाग पर बैठे हुए लाल-पीले और अरुण रंग के पक्षी तथा जीव-जीवक वहां हर समय एक-दूसरे को देख रहे थे।

जल का सभी के लिए समान महत्व है, देवता हो या दैत्य।
जल रहित महल भी श्मशान होता है।

कल्याण अंक – सन्तसुशान्तंसततंनमामि – आरुणि या उद्दालक

प्राचीन काल में आयोद धौम्य नाम के ऋषि थे, उनके आरुणि, उपन्यु और वेद नाम के तीन विद्यार्थी पढ़ते थे। धौम्य ऋषि बड़े परिश्रमी थे, वे विद्यार्थियों से खूब काम लेते थे। किन्तु उनके विद्यार्थी भी इतने गुरु भक्त थे कि गुरु जी जो भी आज्ञा देते, उसका पालन वे बड़ी तत्परता के साथ करते। कभी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते।

एक दिन खूब वर्षा हो रही थी, गुरु जी ने पांचाल देश के आरुणि से कहा– 'बेटा आरुणि! तुम अभी चले जाओ, और वर्षा में ही खेत की मेड़ बांध आओ, जिससे वर्षा का पानी खेत के बाहर न निकल पावे। सब पानी बाहर निकल जायेगा तो फसल अच्छी नहीं होगी। पानी खेत में ही सूखना चाहिए।

गुरु की आज्ञा पाकर आरुणि खेत पर गया। मूसलाधार पानी पड़ रहा था। खेत में खूब पानी भरा था, एक जगह बड़ी ऊंची मेड़ थी। वह मेंड पानी के वेग से बहुत कट गई थी। पानी उसमें से बड़ी तेजी के साथ निकल रहा था। आरुणि ने फावड़ी से इधर-उधर की बहुत सी मिट्टी लेकर उस कटी हुई मेंड पर रखी। जब तक वह मिट्टी रखता और दूसरी मिट्टी रखने के लिए लाता तब तक पहली मिट्टी बह जाती। उसने जी-तोड़ परिश्रम किया, किन्तु जल वेग इनता तीव्र था कि वह पानी को रोक न सका। तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा– गुरु की आज्ञा है कि पानी खेत से निकलने न पावे और पानी निरन्तर निकल रहा है। अतः उसे एक बात सूझी। फावड़े को रख कर वह कटी हुई मेड की जगह स्वयं लेट गया। उसके लेटने से पानी रुक गया। थोड़ी देर में वर्षा भी बन्द हो गयी किन्तु खेत में पानी भरा हुआ था। वह यदि उठता है तो सब पानी निकल जाता है, अतः वह वहीं चुपचाप पानी रोके पड़ा रहा। वहां पड़े-पड़े उसे रात्रि हो गयी।

अन्तःकरण से सदा भलाई में रत रहने वाले गुरु ने शाम को अपने सब शिष्यों को बुलाया, उनमें आरुणि नहीं था। गुरुजी ने पूछा– 'आरुणि कहां गया?' शिष्यों ने कहा – 'भगवान्! आपने ही तो उसे प्रातः खेत की मेड़ बनाने

भेजा था।' गुरु जी ने सोचा– 'ओहो! प्रातःकाल से अभी नहीं आया? चलो चलें, उसका पता लगावें। यह कह कर अपने शिष्यों के साथ प्रकाश लेकर आरुणि खोज में चले। उन्होंने इधर-उधर बहुत ढूंढ़ा, किन्तु आरुणि कहीं दीखा ही नहीं। तब गुरु जी ने जोरों से आवाज दी – 'बेटा आरुणि! तुम कहां हो? हम तुम्हारी खोज कर रहे हैं। दूर से आरुणि ने पड़े-पड़े आवाज दी – 'गुरुजी! मैं यहां मेड़ बना पड़ा हूँ।' आवाज के सहारे-सहारे गुरु जी वहां पहुँचे। उन्होंने जाकर देखा कि आरुणि सचमुच मेड़ बना हुआ पड़ा है और पानी को रोके हुए है।

गुरुजी ने कहा– 'बेटा! अब तुम निकल आओ।' गुरुजी की आज्ञा पाकर आरुणि मेड़ को काटकर निकल आया। गुरुजी का हृदय भर आया। उन्होंने अपने प्यारे शिष्य को छाती से चिपका लिया। प्रेम से उसका माथा सूंघा और आशीर्वाद दिया– 'बेटा! मैं तुम्हारी गुरु भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें बिना पढ़े ही सब विद्या आ जायेगी, तुम जगत् में यशस्वी और भगवत भक्त होंगे। आज से तुम्हारा नाम उद्दालक हुआ।' वे ही आरुणि मुनि उद्दालक के नाम से प्रसिद्ध हुए।

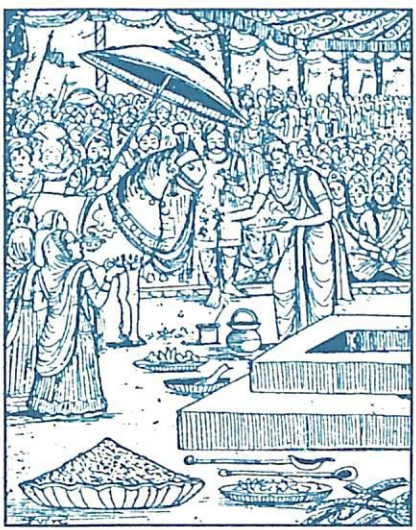

पद्म पुराण –
गणेश और कार्तिकेय की जन्म कथा

पुलस्त्यजी कहते हैं – राजन्! तदनन्तर भगवान् शंकर पार्वती देवी के साथ नगर के रमणीय उद्यानों तथा एकान्त वनों में विहार करने लगे। देवी के प्रति उनके हृदय में अनुराग था। एक समय की बात है – गिरिजा ने सुगन्धित तेल और चूर्ण से अपने शरीर में उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथ में उठा कर उन्होंने एक पुरुष की आकृति बनाई जिसका मुँह हाथी के समान था, फिर खेल करते हुए भगवती शिवा ने उसे गंगाजी के जल में डाल दिया। गंगाजी पार्वती को अपनी सखी मानती थीं। उनके जल में पड़ते ही वह पुरुष विशालकाय हो गया। पार्वती देवी ने उसे पुत्र कहकर पुकारा। फिर गंगाजी ने भी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवताओं ने गंगेय कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजानन देवताओं के द्वारा पूजित हुए। ब्रह्मा जी ने उन्हें गणों का आधिपत्य प्रदान किया।

तत्पश्चात् परम सुन्दरी शिवा देवी ने खेल में ही एक वृक्ष बनाया। उससे अशोक का मनोहर अंकुर फूट निकला। सुन्दर मुख वाली पार्वती ने उसका मंगल संस्कार किया। तब इन्द्र के पुरोहित बृहस्पति आदि ब्राह्मणों, देवताओं तथा मुनियों ने कहा – 'देवी! बताइये, वृक्षों के पौधे लगाने से क्या फल होगा? यह सुनकर पार्वती देवी का शरीर हर्ष से पुलकित हो उठा, वे अत्यन्त कल्याणमय वचन बोलीं – 'जो विज्ञ पुरुष ऐसे गांव में जहां जल का अभाव हो,

कुआं बनवाता है, वह उसके जल की जितनी बूंदे हों, उतने वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है। दस कुओं के समान एक बावड़ी, दस बावड़ियों के समान एक सरोवर, दस सरोवरों के समान एक कन्या और दस कन्या के समान एक वृक्ष लगाने का फल होता है। यह शुभ मर्यादा नियत है। यह लोक को उन्नति पर ले जाने वाली है। माता पार्वती के यों कहने पर बृहस्पति आदि ब्राह्मण उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने निवास स्थान को चले गये। उनके जाने के पश्चात् भगवान् शंकर पार्वती के साथ अपने भवन में गये। उस भवन में चित्त को प्रसन्न करने वाले ऊँचे-ऊँचे चौबारे, अटारियां और गोपुर बने हुए थे। वेदियों पर मालाएं शोभा पा रही थीं। सब ओर सोना जड़ा था। महल में पुष्प बिखरे हुए थे जिनकी सुगन्ध से उन्मत होकर भ्रमरगण गुंजार कर रहे थे। उस भवन में भगवान् श्री शंकर को पार्वती जी के साथ निवास करते हुए एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब देवता ने उतावले होकर अग्निदेव को श्री शंकर जी की चेष्टा जानने के लिये भेजा। अग्नि ने तोते का रूप धारण करके जिससे पक्षी आते-जाते थे, उसी छिद्र के द्वारा शंकर जी के महल में प्रवेश किया और उन्हें गिरिजा के साथ एक शय्या पर सोते देखा। तत्पश्चात् देवी पार्वती शय्या से उठ कर कौतूहलवश एक सरोवर के तट पर गयी, जो सुवर्णमय कमलों से सुशोभित था। वहां जाकर उन्होंने जल विहार किया। तदनन्तर वे सखियों के साथ सरोवर के किनारे बैठीं और उसके निर्मल पंकजों से सुशोभित स्वादिष्ट जल को पीने की इच्छा करने लगीं। इतने में ही उन्हें सूर्य के समान तेजस्विनी छः कृतिकाएं दिखाई दीं। वे कमल के पत्ते में उस सरोवर का जल लेकर जब अपने घर को जाने लगीं, तब पार्वती देवी ने हर्ष में भर कर कहा– 'देवियों! कमल के पत्ते में रखे जल को मैं भी देखना चाहती हूँ। 'वे बोलीं– सुमुखि! हम तुम्हें इसी शर्त पर जल दे सकती हैं कि तुम्हारे प्रिय गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न हो, वह हमारा भी पुत्र माना जाये एवं हममें भी मातृभाव रखने वाला तथा हमारा रक्षक हो। वह पुत्र तीनों लोकों में विख्यात होगा। 'उनकी बात सुनकर गिरिजा ने कहा– 'अच्छा ऐसा ही हो। 'यह उत्तर

पा कर कृतिकाओं को बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कमल-पत्र में स्थित जल में से थोड़ा पार्वती जी को भी दे दिया। उनके साथ पार्वती ने भी क्रमशः उस जल का पान किया।

जल पीने के बाद तुरन्त ही रोग-शोक का नाश करने वाला एक सुन्दर और अद्‌भुत बालक भगवती पार्वती की दाहिनी कोख फाड़कर निकल आया। उसका शरीर सूर्य की किरणों के समान प्रकाश-पुंज से व्याप्त था। उसने अपने हाथ में तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अंकुश धारण कर रखे थे। वह अग्नि के समान तेजस्वी और स्वर्ण के समान गोरे रंग का बालक कृतित दैत्यों को मारने के लिये प्रकट हुआ था, इसलिए उसका नाम 'कुमार' हुआ। वह कृतिका के दिये हुए जल से शाखाओं सहित प्रकट हुआ था। वे कल्याणमयी शाखाएं छहों मुखों के रूप में विस्तृत थीं, इन्हीं सब कारणों से वह तीनों लोकों में विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नाम से विख्यात हुआ। ब्रह्मा, श्रीविष्णु, इन्द्र और सूर्य आदि समस्त देवताओं ने चन्दन, माला, सुन्दर धूप, खिलौने, छत्र, चंवर, भूषण और अंगराज आदि के द्वारा कुमार षडानन को सावधानी के साथ विधिपूर्वक सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया। भगवान् श्री विष्णु ने सब तरह के आयुध प्रदान किये। धनाध्यक्ष कुबेर ने दस लाख यक्षों की सेना दी। अग्नि ने तेज और वायु ने वाहन अर्पित किये। इस प्रकार देवताओं ने प्रसन्न चित्त से सूर्य के समान तेजस्वी स्कन्द को अनन्त पदार्थ दिये। तत्पश्चात् वे सब पृथ्वी पर घुटने टेक कर बैठ गये और स्तोत्र पढ़कर वरदायक देवता षडानन की स्तुति करने लगे। स्तुति पूर्ण होने के पश्चात् कुमार ने कहा – 'देवताओं! आप लोग शान्त होकर बताइये, मैं आपकी कौन सी इच्छा पूरी करूँ? यदि आपके मन में चिरकाल से कोई असाध्य कार्य करने की भी इच्छा हो तो कहिये।'।

जिन द्वारा राजा वेन को पाप प्रकृति मार्ग पर चलने को प्रेरित करना– ऋषियों एवं सूत जी का संवाद :–

सूत जी ने ऋषियों के आग्रह पर बताया कि – धर्म के ज्ञाता प्रजापालक राजा वेन जब शासन कर रहे थे, उस समय कोई पुरुष छद्मवेश धारण किये उनके दरबार में प्रवेश किया। वह वेद शास्त्रों को दूषित करने वाले शास्त्र का पाठ कर रहा था। जहां महाराज वेन बैठे थे। उसी उत्तावली के साथ पहुंचा। उसे आया देख वेन ने पूछा – 'आप कौन हैं, जो ऐसा अद्भुत रूप धारण किये यहां आये हैं ? मेरे सामने सब बातें सच-सच बताइये। वेन के वचन सुनकर उस पुरुष ने उत्तर दिया – 'तुम इस प्रकार धर्म के पचड़े में पड़कर जो राज्य चला रहे हो, वह सब व्यर्थ है। तुम बड़े मूढ़ जान पड़ते हो। मेरा परिचय जानना चाहते हो, तो सुनो – मैं देवताओं का परम पूज्य हूँ। मैं ही ज्ञान, मैं ही सत्य और मैं ही सनातन ब्रह्म हूँ। मोक्ष मैं ही हूँ। मैं ब्रह्माजी के देह से उत्पन्न सत्यप्रतिज्ञ पुरुष हूँ। मुझे जिन स्वरूप जानो, सत्य और धर्म ही मेरा कलेवर है। ज्ञानपारायण योगी मेरे ही स्वरूप का ध्यान करते हैं। श्री वेन ने पूछा – ये ब्राह्मण तथा आचार्यगण गंगा आदि नदियों को पुण्यतीर्थ बतलाते हैं, इनका कहना है, ये तीर्थ महान् पुण्य प्रदान करने वाले हैं। इससे कहां तक सत्य है ? यह बताने की कृपा कीजिये।

जिन बोला – महाराज ! आकाश से बादल एक ही समय जो पानी बरसाते हैं, वह पृथ्वी और पर्वत सभी स्थानों में गिरता है। वही बह कर नदियों में एकत्रित होता है और वहां से सर्वत्र जाता है। नदियां जो जल बहाने वाली हैं ही, उनमें तीर्थ कैसा। सरोवर और समुद्र – सभी जल के आश्रय हैं, पृथ्वी को धारण करने वाले भी केवल पत्थर की राशि हैं, इनमें तीर्थ नाम की कोई वस्तु नहीं है। यदि समुद्र आदि में स्नान करने से सिद्धि मिलती है तो मछलियों को सबसे पहले सिद्ध होना चाहिए, पर ऐसा नहीं देखा जाता। राजेन्द्र ! एक मात्र भगवान् जिन ही सर्वमय हैं, उनसे बढ़कर न कोई धर्म है, न तीर्थ। संसार में जिन ही सर्वश्रेष्ठ है, अतः उन्हीं का ध्यान करो, इससे तुम्हें नित्य की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार उस पुरुष ने वेद, दान, पुण्य तथा यज्ञरूप समस्त धर्मों की

निन्दा करके अंग कुमार राजा वेन को पाप के भावों द्वारा बहुत कुछ समझाया-बुझाया। उसके इस प्रकार समझाने पर वेन के हृदय में पाप भाव का उदय हो गया।

वेन के राज्य में पापाचार बढ़ने पर एक दिन सप्तऋषि अंग-कुमार वेन के पास आये और उसे आश्वासन देते हुए बोले – वेन! दुःसाहस न करो, तुम यहां प्रजा के रक्षक बनाये गये हो, यह सारा जगत् तुम पर ही अवलम्बित है, धर्माधर्मरूप सम्पूर्ण विश्व का भार तुम्हारे ही ऊपर है। अतः पाप-कर्म छोड़कर धर्म का आचरण करो।' सप्तऋषियों द्वारा प्रताड़ित करने पर वेन का पाप निकल गया और वह भगवान विष्णु की तपस्या में लीन हो गया। उसकी तपस्या से भगवान श्रीहरि विष्णु प्रसन्न हुए।

राजा वेन के श्रीहरि से शुभकर्म और उत्तम तीर्थों की पवित्रता के विषय में पूछे जाने पर श्रीहरि ने बताया कि सम्पूर्ण शुकर्मो का अवसर, उत्तम वैवाहिक उत्सव, नवजात पुत्र के जातकर्म आदि संस्कार तथा चूड़ाकर्म और उपनयन आदि का समय मन्दिर, ध्वजा, देवता, बावड़ी, कुआं, सरोवर, बगीचे आदि की प्रतिष्ठा का शुभ अवसर – इन सबको आभ्युदायिक काल कहा गया है। उस समय जो दान दिया जाता है, वह सम्पूर्ण सिद्धियों को देने वाला होता है। इसी प्रकार तीर्थ के विषय में श्रीहरि ने कहा कि यदि नदियों के तीर्थ का नाम ज्ञात न हो, तो उसका 'विष्णुतीर्थ' नाम रख लेना चाहिये। सभी तीर्थों में मैं ही देवता हूँ। तीर्थ भी मुझ से भिन्न नहीं है।

भूमण्डल पर सात सिन्धु परम पवित्र और सर्वत्र स्थित है। जहां कहीं भी उत्तम तीर्थ प्राप्त हों, वहां स्नान-दान आदि कर्म करना चाहिए। उत्तम तीर्थों के प्रभाव से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। राजन्! मानस आदि सरोवर भी पावन तीर्थ बताये गये हैं तथा जो छोटी-छोटी नदियां हैं, उनमें भी तीर्थ प्रतिष्ठित है।

कुएं को छोड़कर जितने भी खोदे हुए जलाशय हैं, उनमें तीर्थ की प्रतिष्ठा है। प.पु.भू.ख.

आज भी बहुत से छद्मधारी हितैशी भारत को अपने प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए समझाने की पूरी कोशिश में लगे हैं। हमें स्वयं अपने ही विवेक को सबल बनाना होगा।

मत्स्य पुराण – एक सौ छत्तीसवां अध्याय – मय का चिन्तित होकर अद्‌भुत बावड़ी का निर्माण करना – सूत जी एवं ऋषियों का संवाद

सूतजी कहते हैं – ऋषियों! दानव श्रेष्ठ मायावी मय स्वामिकार्तिक पर प्रहार कर त्रिपुर में उसी प्रकार तुरंत प्रवेश कर गया, जैसे नीलक आकाश में बादल प्रविष्ट हो जाते हैं। वहां आकर उसने लम्बी और गरम सांसें ली तथा त्रिपुर में भागकर आये हुए दानवों की ओर देखकर लोक के विनाश के अवसर पर दूसरे काल के समान मय काल के विषय में विचार करने लगा – 'अहो! रणभूमि में युद्ध की अभिलाषा से सम्मुख खड़ा हो जाने पर जिससे इन्द्र भी डरते थे, वह महायशस्वी विद्युन्माली भी काल का ग्रास बन गया। त्रिलोकी समता में अन्य कोई दुर्ग अथवा पुर नहीं है। फिर भी इस पर भी ऐसी आपत्ति आ ही गयी, अतः प्राण रक्षा के लिए दुर्ग कोई कारण नहीं है। इसलिए मैं तो ऐसा समझता हूँ कि दुर्ग ही क्यों? दुर्ग से भी बढ़कर सभी वस्तुएं काल के ही वश में हैं। तब भला काल के कुपित हो जाने पर इस समय हम लोगों की काल से रक्षा कैसे हो सकेगी? तीनों लोकों तथा समस्त प्राणियों में जो कुछ है, वह सारा का सारा काल के वशीभूत है– ऐसा ब्रह्मा का विधान है। ऐसे अमित पराक्रमी एवं असाध्य काल के प्रति कौन उद्योग सफल हो सकता है? भगवान् शंकर के अतिरिक्त उस काल पर विजय पाने में कौन समर्थ हो सकता है? मैं इन्द्र, यम और वरुण से नहीं डरता, कुबेर से भी मुझे कोई भय नहीं है, किन्तु इन देवताओं के स्वामी जो महेश्वर हैं, उन पर विजय पाना दुष्कर है। फिर भी जब तक ये

दानववीर चारों ओर बिखरे हुए हैं, तब तक ये ऐश्वर्य प्राप्ति का जो फल होता है तथा स्वामी बनने का जो फल होता है, उसे मैं प्रदर्शित करूँगा। मैं एक ऐसी बावड़ी का निर्माण करूँगा, जिसमें अमृतरूपी जल भरा होगा। साथ ही कुछ श्रेष्ठ औषधियों का भी आविष्कार करूंगा। उन श्रेष्ठ संजीवनी औषधियों के प्रयोग से मरे हुए दैत्य जीवित हो जाएंगे।

ऐसा विचार कर मायावियों में बलवान् मय ने एक सुन्दर बावड़ी की रचना की, जैसे ब्रह्मा जी ने माया से रम्भा अप्सरा की रचना कर डाली थी। बावड़ी दो योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी थी। उसमें चित्र विचित्र प्रसंगों वाली कथा की भांति क्रमशः चढ़ाव-उतारवाली सीढ़ियां बनी थीं। वह चन्द्रमा की किरणों के समान उज्जवल, अमृत – सदृश मधुर एवं सुगन्धित उत्तम जल से भरी हुई ऐसी लग रही थी, मानों सम्पूर्ण सद्गुणों से पूर्ण कोई वनिता हो। उसमें नील, कमल, कुमुदिनी और अनेकों प्रकार के कमल खिले हुए थे। वह चन्द्रमा और सूर्य के समान चमकीले रंगवाले भयंकर डेनों से युक्त कलहंसों से व्याप्त थी। उसमें सुन्दर सुनहली क्रांति वाले पक्षी मधुर शब्दों में गूंज रहे थे। वह जलाभिलाषी जीवों से व्याप्त उन्हें प्राणदान करने वाली की तरह दीख रही थी। जैसे महेश्वर ने गंगा को उत्पन्न किया था। उसी प्रकार मय ने उस बावली की रचना कर उसके जल से सर्वप्रथम विद्युन्माली के शव को धोया। उस बावड़ी में डुबोये जाने पर देवशत्रु महाबली दैत्य विद्युन्माली उसी प्रकार उठ खड़ा हुआ, जैसे इन्धन पड़ने से हवन की गई अग्नि तुरन्त उद्दीप्त हो उठती है। उठते ही विद्युन्माली ने हाथ जोड़कर मय और तारकासुर का अभिवादन किया और मय से इस प्रकार कहा – 'प्रथमयपी श्रगालों से घिरा हुआ रूद्र के साथ नन्दी कहां खड़ा है ? अब हम शत्रुओं को पीसते हुए युद्ध करेंगे। हम लोगों के शरीर में दया कहां ? हम लोग या यो रुद्र को खदेड़कर प्रभावशाली होंगे अथवा उनके द्वारा युद्धस्थल में मारे जाकर यमराज के ग्रास बन जाएँगे। 'विद्युन्माली के ऐसे

उत्साहपूर्ण वचन सुनकर महासुर मय के नेत्रों में आंसू छलक आये। तब उसने विद्युन्माली का आलिंगन कर इस प्रकार कहा –'महाबाहु विद्युन्माली! तुम्हारे बिना न तो मुझे राज्य अभीष्ट है, न जीवन की ही अभिलाषा है। महासुर! अन्य पदार्थों की तो बात ही क्या है? ऐश्वर्यशाली वीर! मैंने मायाद्वारा अमृत से भरी हुई इस बावड़ी की रचना की है। यह मरे हुए दानवों और दैत्यों को जीवन दान देगी। दैत्य! सौभाग्यवश इसी के प्रभाव से मैं तुम्हें यमलोक से लौटा हुआ देख रहा हूँ। अब हम लोग आपत्ति के समय अन्याय से अपहरण की हुई महानिधि का उपभोग करेंगे।

दैनिक जीवन में जल के व्यावहारिक शिष्टाचार एवं उपयोग

पद्म पुराण – स्वर्गः खण्ड

व्यावहारिक शिष्टाचार वर्णन में व्यास जी ने कहा है कि – पानी में पेशाब या पाखाना न करें। नग्न होकर स्नान न करें। जल, वायु और धूप आदि के द्वारा दूसरे को कष्ट न पहुँचायें।

ब्रह्मचारी – जल, भिक्षा, फूल और समिधा – इन्हें दूसरे दिन के लिए संग्रह न करें। आचमन के लिए जल ऐसा होना चाहिए, जो गर्म न हो, जिसमें फेन न हो तथा खारा न हो।

ब्रह्मचारी को कुएं के पास, जल के निकट, जल की ओर मुँह करके, नदी के किनारे मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिए। शुद्धि के लिए कुएं के पास से और जल से भी मिट्टी न लें।

गृहस्थ धर्म में अंजली से जल न पीयें। पानी पर कभी पैर या हाथ से आघात न करें। अगाध जल में न घुसें, बायें हाथ से जल उठाकर या पानी में मुँह लगाकर न पीयें। आचमन किये बिना जल में न उतरें। पानी में वीर्य न छोड़े, जल में मैथुन न करें।

वानप्रस्थ – जल देने वाले मनुष्य की तृप्ति होती है। अतः जल का महत्व अधिक है।

मार्कण्डेयपुराण :– मदालसा एवं अलर्क संवाद

ब्रह्मचारी को त्रिकाल स्नान करना चाहिए।

गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन पितरों के उद्देश्य से अन्न और जल के द्वारा श्राद्ध करें।

दुर्गन्धित, फेनयुक्त, थोड़े जल वाले सरोवर से लाया हुआ, जहां गाय की प्यास न बुझ सके – ऐसे स्थान से प्राप्त किया हुआ, रात का भरा हुआ, सब लोगों का छोड़ा हुआ, अपेय तथा पौंसले का जल श्राद्ध सदा ही वर्जित है।

पानी में मल-मूत्र त्याग अथवा मैथुन न करें। नग्न होकर स्नान न करें।

बिना कारण बारंबार सिर के ऊपर से स्नान न करें। सिर से स्नान कर लेने पर किसी भी अंग में तेल न लगायें।

दुर्गन्धि युक्त जल में स्नान न करें। रात्रि में न नहायें, ग्रहण के समय रात्रि में भी स्नान करना उत्तम है, इसके सिवा अन्य समय में दिन में ही स्नान का विधान है ।

जिस पात्र में बाल या कीड़े हों, जिसे गाय ने सूंघ लिया हो तथा जिसमें मक्खियां पड़ी हों, उसकी शुद्धि राख और मिट्टी से मलकर जल द्वारा धोने से होती है। तांबे का बर्तन खटाई से, रांग और सीसा राख से और कांसे के बर्तन की शुद्धि राख और जल से होती है।

जिस पात्र में कोई अपवित्र वस्तु पड़ गई हो, उसे मिट्टी और जल से तब तक धोयें, जब तक कि उसकी दुर्गन्ध दूर न हो जाये, इससे वह शुद्ध होता है।

पानी पाने के बाद विधिपूर्वक आचमन करें। अस्पृश्य वस्तुओं से जिनका स्पर्श हो गया हो उनकी, रास्ते के कीचड़ और जल की तथा ईंट की बनी हुई वस्तुओं की वायु के संसर्ग से शुद्धि होती है।

मनुष्य की गीली हड्डी का स्पर्श करके स्नान करने से शुद्धि होती है और सूखी हड्डी का स्पर्श कर लेने पर आचमन करके गाय का स्पर्श या सूर्य का दर्शन करने से मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

जूंठन, मल-मूल और पैरों के धोवन को घर से बाहर फेंके। दूसरे के खुदवाये हुए पोखरे आदि के जल में पाँच लौटा मिट्टी के निकाले बिना स्नान न करें। देवता संबंधी सरोवरों तथा नदियों में सदा स्नान करें।

अभक्ष्य पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिलाव, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित जाति –बहिष्कृत, चाण्डाल, मुर्दा ढ़ोने वाले, रजस्वला स्त्री, ग्रामीण सूअर तथा अशौचदूषित मनुष्यों से दूषित होने पर स्नान करने से शुद्धि होती है।

गृहस्थोचित सदाचार

शंख, पत्थर, सोना, चांदी, रस्सी, कपड़ा, साग, मूल, फल, मणि, हीरा, मूंगा, मोती, पात्र और चम्मच – इन सबकी शुद्धि जल से होती है।

लोहे के पात्रों एवं हथियारों की शुद्धि पानी से धोने तथा पत्थर की शान पर रगड़ने से होती है।

जिस पात्र में तेल या घी रखा गया हो, उसकी सफाई गर्म जल से होती है।

सूप, मृगचर्म, मूसल, ओखली तथा कपड़ों के ढेर की शुद्धि जल छिड़कने मात्र से होती है।

वल्कल वस्त्र की शुद्धि जल और मिट्टी से होती है।

जो जल बहता हो तथा जिसमें दुर्गन्ध न आती हो, ऐसा जल शुद्ध माना गया है। समयानुसार जल छिड़कने से भूमि शुद्ध होती है।

जल से संबंधित सुभाषित मालिका

सुभाषित शब्द का अर्थ है सुन्दर रूप से कहा गया। **कथ सुष्ठुभाषितम् सुभाषितम्**। इनमें हमारी संस्कृति के लोकाचार, रीति-रिवाज और मान्यताओं की झलक दिखाई देती है। जल के विषय में बहुत सी सुभाषित और सूक्ति प्रचलित होकर लोकोक्ति के रूप में आज भी प्रयुक्त होते हैं।

दुर्जन, दुर्गुण चर्चा –

अगाधजलसंचारी न गर्व याति रोहितः।
अंगुष्ठा मात्र तोयेऽपि शफरी फर्फरायते॥

गहरे जल में विचरने वाला रोहू अपना आभास नहीं दिलाता पर थोड़े से जल में तैरने वाली शफरी मछली फड़फडाती रहती है।

अंगुष्ठोदकमात्रेण भेलो मकमकायते। अंगूठे मात्र गहरे जल में भी स्थित मेंढक टर्र-टर्र करता है।

सज्जन सहगण प्रशंसा –

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव। जिस तरह बादल बरसाने के लिए ही समुद्र से पानी लाते हैं, उसी तरह सज्जन भी दान करने के लिए ही कुछ ग्रहण करते हैं।

सधुरेवार्थिभिर्याच्यः क्षीणवितोऽपि सर्वदा।
शुष्कोपऽपि हिनदीमार्गः खन्यते सलिलार्थिभिः॥

सत्पुरुषों के क्षीर्णवित्त होने पर भी याचक उनसे आशा रखते हैं। नदी जिस मार्ग में बहा करती हैं, उस मार्ग के सूख जाने पर जल चाहने वाले कुआं वहीं खोदते हैं।

हास्य-व्यंग्य –

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते। पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।। – भूखे लोग व्याकरण नहीं खाते और प्यासे लोग काव्यरस नहीं पीते।

सामान्य नीति –

जलं जलेन सम्पृक्तं महाजलाशयो भवति। बूंद-बूंद मिलकर समुद्र बनता है।

जल बिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घतः। एक-एक बून्द गिरती रहे, तो घड़ा भर जाता है। **पिपासिता शान्तिमुपैति वारिणा। न जातु दुग्धान्मधुनोइधिकादपि।।** प्यास पानी से ही बुझती है, दूध और शहद से नहीं।

आयुष्यं जललोल बिन्दुचपलम्। हमारा जीवन पानी के बुलबुले के समान चंचल है। व्यर्थ जल बहाना भी जल का अपमान है, युद्धमंत्रणा के समय बलराम जी ने कहा। म.भा.

जल और भोजन

संन्यास – आश्रम के धर्म सिद्धि में जल का महत्व –

भोजन के पहले एक बार जल का आचमन करें और इस प्रकार कहें

अमृतोपस्तरणमसि – हे अमृत रूप जल! तू भोजन का आश्रय अथवा आसन है। फिर भोजन के अन्त में एक बार जल पीयें और कहें– **'अमृतापिधानमसि'** हे अमृत! तू भोजन का आवरण – उसे ढ़कने वाला है।

जल वंशावली

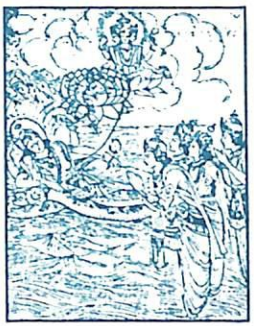

नारायण

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
तासू शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः॥

जल नर से प्रकट हुआ है, इसलिए वह नार कहलाता है। भगवान् उसमें सोते हैं –

भगवान् का वह अयन है, इसलिए वे नारायण कहे गये हैं ।

ब्रह्मा की उत्पत्ति

सृष्टि रचना

प्रकृति की रचना

जल अधिष्ठा वरुण देवता

जल से अग्नि उत्पत्ति

जल का पुत्र सोम

जल का नामकरण

जल का स्वरूप

जल संरक्षण

1. वेद पुराणों में जल के विभिन्न नाम

1. नार या नीर, 2. आपः 3. जल 4. पानी 5. उदक 6. वारि 7. तोय 8. सलिल 9. जड़

2. प्रकृति द्वारा निर्मित प्राकृतिक जल स्रोतों के स्वरूप

1. समुद्र 2. बादल 3. वर्षा 4. बर्फ 5. नद 6. नदी 7. झरना 8. झील 9. स्रोते

3. समाज द्वारा निर्मित जल संरक्षण के साधनों के नाम

1. तडाग 2. तालाब 3. पोखर 4. पोखरी 5. कसार 6. जलाशय 7. सरोवर 8. पुष्कर 9. पुष्करणी 10. कुआं 11. बावड़ी 12. वापी 13 कूप 14 प्याऊ 15. पौसरे 16 प्रषा

जल की आधुनिक मान्यताएं एवं जल दृष्टि और दर्शन

आधुनिक युग में जल की नई-नई मान्यताएं समाज में बढ़ती जा रही हैं जिनका भारतीय जल-दर्शन से किसी प्रकार का कोई वास्ता नहीं है। हमारे समाज ने जिस कार्य को हेय दृष्टि से देखा, आज वह लाभ का काम माना जाने लगा है। जो पुण्य के कार्य समझे जाते थे, वे अब रूढ़िवादी कार्य हो गये हैं। हमारे पानी पर विदेशी निगाहें जमीं हुई हैं। अब हमारा ही पानी हमें दूध के दामों में मिलता है।

जल की आधुनिक मान्यताएँ

1. **जल की पारम्परिक संरचनाएं आज की जनसंख्या की मांग की पूर्ति नहीं कर सकती।**
2. **पारम्परिक विकेन्द्रीकृत जल प्रबन्धन के बजाय केन्द्रित जल-प्रबन्धन व्यवस्था ज्यादा उचित है।**

3. जल (भू-जल अथवा धरती के ऊपर का जल) सरकार की संपत्ति है।
4. जल एक भोग की वस्तु है व इसे बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता है।
5. पीने के पानी की व्यवस्था करना समाज की नहीं सरकार की जिम्मेदारी है।
6. जल की पूर्ति बड़े व मझले बांधों द्वारा ही की जा सकती है।
7. नदियों का प्रबंधन व समस्याओं का समाधान नदियों के निजीकरण से संभव है।
8. शहरों में जल-पूर्ति की समस्याओं का समाधान जल-प्रबंधन का निजीकरण से संभव है।
9. जल से जुड़ी सभी समस्याओं का समाधान जल-साक्षरता में निहित है।
10. देश के विभिन्न राज्यों में जल की कमी का समाधान नदी-जोड़ परियोजना से ही संभव है।
11. जल उपयोग व जल-दोहन के लिये व्यक्ति स्वतंत्र है।

जल दृष्टि

वर्तमान समय में हमारे राजतंत्र में जल के विषय में दिशा-निर्देश विदेशों से मिल रहे हैं। अपनी न कोई जल दृष्टि है न कोई दिशा।

जल-दर्शन

जिस देश में जल कणों का भी उतना ही महत्व है, जितना एक बड़े जलाशय का। जिस देश में एक चिड़िया के प्रयास से लेकर राजा के प्रयास तक जल संरक्षण के दृष्टांत हों, जहां गरीब-अमीर का भेद-भाव रहित जल-संरक्षण कार्य की पद्धति रही हो, आज इस देश का राजतंत्र विदेशों की सलाह का मोहताज बन गया है।

भारतीय जल-दर्शन और न्याय व्यवस्था

देश में घटते प्राकृतिक जल स्रोतों के कारण बढ़ती जन समस्याओं को देखते हुए देश में न्याय व्यवस्था की सर्वोच्च संस्था उच्चतम न्यायालय ने प्रकृति की रक्षा के लिए एक अहम फैसला किया। माननीय उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था में भारतीय जल-दर्शन की रक्षा निहित है । जिससे देश में बढ़ती जल समस्या के समाधान हेतु सरकार और समाज को आगे आकर कार्य करना होगा। तभी देश के लिए बढ़ती समस्या का समाधान समय रहते हो सकता है।

विषय - मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या-4787/2001, हिंचलाला तिवारी बनाम कमलादेवी आदि में पारित आदेश दिनांक 25.7.2001 का अनुपालन किए जाने सम्बन्धी।

माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपील संख्या 4787/2001, हिंचलाल तिवारी बनाम कमला देवी आदि में निर्णय व्यवस्था इस प्रकार है।

मा. उच्चतम न्यायालय का निर्णय/प्राथमिकता

प्रेषक,

अध्यक्ष,

राजस्व परिषद्, उ.प्र.

लखनऊ।

सेवा में,

1. समस्त मण्डलायुक्त, उत्तर प्रदेश।

2. समस्त जिलाधिकारी, उत्तर प्रदेश।

पत्र संख्या-जी-865/5-9 आर/2001 दिनांक- 24 जनवरी, 2002

विषय - मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील संख्या-4787/2001, हिंचलाला तिवारी बनाम कमलादेवी आदि में पारित आदेश दिनांक 25.7.2001 का अनुपालन किए जाने सम्बन्धी।

महोदय,

उपर्युक्त विषयक शासनादेश संख्या-3135/1-2-2001-रा-2, दिनांक 08 अक्टूबर, 2001 की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए आपसे अपेक्षा की जाती है कि ग्राम उगापुर, तालुका आसनांव जिला संतरविदास नगर से संबंधित तालाबों हेतु सार्वजनिक उपयोग की भूमि के समतलीकरण के परिणामस्वरूप अवैधानिक रूप से आवासीय प्रयोजन हेतु

अवैध रूप से किए गए आवंटन को मा. उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्णय दिनांक 25.7.2001 में यह उल्लेख करते हुए कि तालाबों को विशेष ध्यान देकर तालाब के रूप में ही बनाये रखना चाहिए एवं उसका विकास एवं सौन्दर्यीकरण किया जाना चाहिए, जिससे जनता इसका उपयोग कर सके। अग्रेतर यह भी उल्लेख किया गया है कि जंगल, तालाब, पोखर, पठार तथा पहाड़ आदि समाज की बहुमूल्य धरोहर हैं और उनका अनुरक्षण पर्यावरणिक संतुलन बनाये रखने हेतु आवश्यक है। उक्त मामले में तालाबों के समतलीकरण के परिणामस्वरूप किए गए आवासीय पट्टों को निरस्त किए जाने तथा संबंधित आवंटियों द्वारा स्वयं उस पर निर्मित भवन 6 माह के भीतर ध्वस्त करके तालाब की भूमि का कब्जा गांवसभा को दिए जाने के आदेश देते हुए निर्धारित अवधि के भीतर आवंटियों द्वारा ऐसा न करने पर प्रशासन को उक्त आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने के निर्देश दिए गए हैं।

मा. उच्चतम न्यायालय के उपर्युक्त महत्वपूर्ण निर्णय से स्वत: विदित होता है कि आवासीय प्रयोजन से भिन्न किसी अन्य सार्वजनिक प्रयोजन की भूमि, चाहे वह तालाब/पोखर, रास्ता/चकरोड, खलिहान आदि के लिए आरक्षित भूमि को आवासीय प्रयोजन हेतु आबादी की श्रेणी में परिवर्तित किया जाना अत्यन्त आपत्तिजनक है, क्योंकि इस प्रकार की अवैधानिक कार्यवाही के फलस्वरूप एक ओर पर्यावरणिक संतुलन (एलेश्रेसळलरश्र इरश्ररपलश) बनाये रखने में कठिनाई होती है वहीं दूसरी ओर जल संरक्षण, पशुओं के चारे तथा पेयजल आदि जैसी विकट समस्याएं भी जन्म लेने लगती हैं, जल के स्रोत संकुचित होने लगते हैं एवं भू-जल स्तर बनाये

रखना सम्भव नहीं हो पाता है, जिसका सीधा कुप्रभाव मानव एवं पशु पर पड़ता है।

तालाब/पोखर के अनुरक्षण के संबंध में पूर्व में परिषदादेश संख्या-2751/जी-5-11 डी/98 दिनांक 13 जून 2001 निर्गत किया जा चुका है।

मा. उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के परिप्रेक्ष्य में परिषद की यह अपेक्षा है कि राजस्व विभाग के अधिकारी शीतकालीन भ्रमण के दौरान सार्वजनिक भूमि के दुरुपयोग के विषय में जानकारी करें तथा मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार कार्यवाही सुनिश्चित करें। मण्डलायुक्त कृपया इस संबंध में जिलाधिकारियों से समयानुसार सूचना एकत्र कर लें तथा उसे संकलित करके अपनी आख्या राजस्व परिषद को एफ.डी.ओ. में शामिल कर भेजते रहें।

मा. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में यह भी अपेक्षा की है कि इस प्रकार के सार्वजनिक स्थानों की सुरक्षा की जाये तथा राज्य सरकार एवं राजस्व विभाग इनका विकास करते रहें ताकि ऐसा होने के कारण पर्यावरणिक संतुलन (Ecological Balance) बनाये रखने में कोई कठिनाई न होने पाये । कृपया राजस्व विभाग आवश्यकतानुसार राहत कार्य के अन्तर्गत एवं पंचायती राज विभाग की योजनाओं के अन्तर्गत इन तालाबों की मेड़ को ऊंचा करने तथा गहरा करने की कार्यवाही सुनिश्चित करें ताकि इनकी सुरक्षा सुनिश्चित हो सके। अधिक से अधिक संख्या में यदि सार्वजनिक भूमि पर वृक्ष लगाये जायें तो उससे भी खाली भूमि सुरक्षित

रहेगी। कृपया इस संबंध में विभिन्न पंचायती राज संस्थानों, जिला परिषद, क्षेत्र समिति, डी.आर.डी.ए. इत्यादि को उनकी बैठकों में अवगत करायें। इस परिषदादेश एवं मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को कृपया संबंधित अधिकारियों को परिचालित करायें तथा इसका व्यापक प्रचार भी करायें। विभिन्न अधिवक्ता संघों को भी भेजा जाये।

परिषद की राय में धारा 218 भू-राजस्व अधिनियम के अन्तर्गत जिलाधिकारी एवं आयुक्त के स्तर पर स्वयंमेव निगरानी के रूप में अधिकारियों के विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है अथवा डी.जी.सी. राजस्व के माध्यम से निगरानी का प्रार्थना पत्र दिया जा सकता है।

परिषदादेश के साथ मा. सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के उद्धरण की छाया प्रतिलिपि एवं इस संबंध में राज्य सरकार द्वारा निर्गत किए गए उपरोक्त शासनादेश दिनांक 08-10-2001 की छाया प्रति भी संलग्न की जा रही है।

संलग्नक-उपरोक्त।

भवदीय,

आदित्य कुमार रस्तोगी

अध्यक्ष

We want to aware you regarding the historical decision of Supreme Court of India given on 25-7-2001, which ensures the restoration and conservation of forests, tanks, ponds, hillocks and mountains etc., by declaring them as nature's bounty.

The Revenue Council of State U.P. issued the above letter to the District Magistrates and Commissioners for the follow up of the decision. You too can use this decision and letter for the conservation of your community natural resources. It will be highly appreciated if you would find it justified to send a copy of the Supreme Court decision to the concerned authorities of your region. We believe your efforts will ensure the use of the decision for this noble cause.

For further details on the decision you can refer to :

"Book of Supreme Court Cases 2001"

6SSC Pg No 496-501

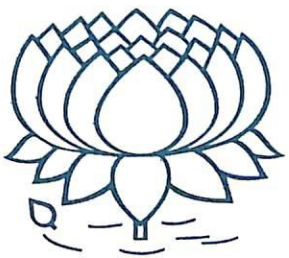

आशा...

युग बदले, समय काल
परिस्थिति अनुसार सभ्यताएं भी बनती-
बिगड़ती रहीं, लेकिन पुष्कर, ताल, सरोवर
वापी-बावड़ी, कुओं का निर्माण हर युग में सतत
चलता रहा। द्वारिका के नवनिर्माण के समय में सभी
देवताओं ने अपना-अपना सहयोग देकर अपने नाम से पुष्कर,
ताल, सरोवरों का निर्माण किया था, इतना ही नहीं भगवान शिव
और जगत् जननी जगदम्बा ने एकता भाव लिये हुए अपने-अपने
नामों से सरोवरों का निर्माण कर द्वारिका को सजल किया। प्रत्येक
सरोवर का अपना-अपना महत्त्व था। समय के साथ-साथ महानगरी
द्वारिका भी समुद्र में समा गई लेकिन पुष्कर, ताल, सरोवर का निर्माण
समयानुसार सतत चलता रहा, इसके निर्माण में किसी प्रकार की
कोई बाधा नहीं आई, क्योंकि पुष्कर, ताल, सरोवर भारतीय
समाज की जीवनशैली में समाहित रहा था। उन पर समय काल
परिस्थिति का असर नहीं होता। जब समाज इन्हें नकारता है
तो स्वयं समस्याओं को आमन्त्रित करता है। भारत में
युगों-युगों से चली आ रही जल-संरक्षण,
जल-दर्शन की जीवनशैली को अपनाकर
ही हमारा देश महान् देश
बनेगा!

''आदिकाल में सृष्टि की पहली रचना भगवान विष्णु ने अपने चक्र-सुदर्शन से पुष्करिणी खोदकर की और भगवान शिव ने उसका नाम मणिकर्णिका रखा। युग-युगान्तर बीतते गये। श्री भगवान, देवता, दैत्य, असुर, मनुष्य सभी ने पुष्कर, ताल, सरोवरों का निर्माण सतत किया। पुष्कर, ताल, सरोवरों का निर्माण भारतीय समाज का जीवनसार बनकर जीवनशैली में समाहित हो गया। वर्तमान परिस्थितियों में भारत ही नहीं दुनिया में इसकी जरूरत और अधिक बढ़ती दिखाई दे रही है। भारत की सर्वोच्च न्याय व्यवस्था ने तो इसे प्राथमिकता के आधारभूत कार्यों में माना है।''

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा-किशोरी, वाया थानागाजी
अलवर-301 022
दूरभाष : 01465-205043, 0141-2393178
E-mail : watermantbs@yahoo.com